मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 29 ● वर्ष 3 ● अंक 11–12 ● (संयुक्तांक) जनवरी–फरवरी 2014 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है? (समापन किस्त) 11

अमीरों के लिए अंगों के स्पेयर पार्ट की दुकानें नहीं हैं ग़रीब! 4

चाय बेचने की दुहाई देकर देश बेचने के मंसूबे 5

गहराता आर्थिक संकट, फासीवादी समाधान की ओर बढ़ती पूँजीवादी राजनीति और विकल्प का सवाल

मज़दूर वर्ग के लिए कोई शॉर्टकट नहीं, इस ढाँचे के आमूल बदलाव की लम्बी लड़ाई ही एकमात्र रास्ता!

जैसे-जैसे लोकसभा चुनाव क़रीब आ रहा है पूँजीवादी राजनीति के सारे छल-छद्म उजागर होते जा रहे हैं और उसका संकट खुलकर सामने दिखाई दे रहा है। पूरी दुनिया के पैमाने पर गहरी मन्दी और गहन वित्तीय संकट का शिकार पूँजीवादी व्यवस्था को इससे निकलने का कोई उपाय नज़र नहीं आ रहा। दस साल से सत्ता में मौजूद कांग्रेस को ज़ाहिरा तौर पर उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों से जनता पर टूटे कहर का खामियाज़ा भुगतना पड़ रहा है। रही-सही कसर रिकार्डतोड़ घपलों-घोटालों ने पूरी कर दी है। कांग्रेस को उम्मीद थी कि चुनाव क़रीब आने पर लोक-लुभावन योजनाओं का पिटारा खोलकर वह जनता को एक बार फिर बरगलाने में कामयाब हो जायेगी। मगर घनघोर वित्तीय संकट ने इस क़दर उसके हाथ बाँध दिये है कि चाहकर भी वह कुछ हवाई वादों से ज़्यादा नहीं कर पा रही है। उधर नरेन्द्र मोदी पूँजीपति वर्ग के सामने एक ऐसे नेता के तौर पर अपने को पेश कर रहा है जो डण्डे के ज़ोर पर जनता के हर विरोध को कुचलकर मेहनतकशों को निचोड़ने और संसाधनों को मनमाने ढंग से पूँजीपतियों के हवाले करने में कांग्रेस से भी दस क़दम आगे रहकर काम करेगा। बार-बार अपने जिस गुजरात मॉडल का वह हवाला देता है वह इसके सिवा और कुछ भी नहीं है। संकट में बुरी तरह घिरे पूँजीपति वर्ग को इसीलिए अभी वह सबसे प्रिय विकल्प नज़र आ रहा है।

पूँजीवादी राजनीति की इसी भ्रमपूर्ण स्थिति का फायदा उठाकर अलग-अलग क्षेत्रीय पार्टियों के महत्वाकांक्षियों ने एक बार फिर तीसरे मोर्चे की जोड़-तोड़ शुरू कर दी है। मज़दूरों के रहनुमा बनने वाले भाकपा-माकपा के नेता पूरी बेशर्मी के साथ घोर मज़दूर विरोधी, फासिस्ट और महाभ्रष्ट जयललिता को इस मोर्चे में शामिल करके इस क़वायद की औपचारिक शुरुआत कर चुके हैं। वैसे इसमें कोई आश्चर्य नहीं, पिछले चुनाव के समय यही लोग जयललिता की मौसेरी बहन मायावती को भी प्रधानमंत्री बनाने के लिए उसकी डोली के कहार बने हुए थे। कांग्रेस ने ऐन वक़्त पर लालू प्रसाद से फिर गलबहियाँ करके नीतीश कुमार को अकेला छोड़ दिया है मगर मुलायम सिंह से लेकर ममता बनर्जी तक सभी दिल्ली चलो की ताल ठोंकने में लगे हुए हैं।

परिदृश्य पर अचानक उभरी केजरीवाल की आम आदमी पार्टी ने भी मौका देखकर राष्ट्रीय अखाड़े में कूदने की ताल ठोंक दी है। हालाँकि शुरू में इनके नेता ज़रूरत से ज़्यादा उत्साहित होकर 300-400 सीटों पर चुनाव लड़ने के दावे कर रहे थे मगर जल्दी ही इन्हें वस्तुस्थिति का अहसास हो गया और अब ये चुनिन्दा सीटों पर लड़ने की बात कर रहे हैं। फिर भी अभी काफ़ी लोग इनसे कांग्रेस-भाजपा का राष्ट्रीय विकल्प बनने की उम्मीद लगाये हुए हैं। 'आप' पार्टी को मिली अप्रत्याशित कामयाबी मँहगाई-बेरोज़गारी-भ्रष्टाचार से परेशान आम मध्यवर्ग के आदर्शवादी यूटोपिया और साफ-सुथरे पूँजीवाद तथा तेज़ विकास की कामना करने वाले कुलीन मध्यवर्ग के प्रतिक्रियावादी यूटोपिया का मिलाजुला परिणाम है। दिल्ली में इन्होंने तरह-तरह के वादे करके निम्न मध्यवर्ग और ग़रीब आबादी से भी काफ़ी वोट बटोर लिये थे लेकिन उन वायदों को पूरा करने से ये फौरन ही

(पेज 13 पर जारी)

बेनक़ाब हुई केजरीवाल सरकार, श्रम मन्त्री मज़दूरों की महासभा से भागे!
ठेका प्रथा उन्मूलन के वायदे से मुकरी केजरीवाल सरकार!

दिल्ली के मज़दूरों ने आने वाले लोकसभा चुनावों में सभी चुनावी पार्टियों और ख़ासकर आम आदमी पार्टी के भण्डाफोड़ का फैसला किया

6 फरवरी को विशाल संख्या में दिल्ली सचिवालय पर दिल्ली के मज़दूरों ने प्रदर्शन और महासभा का आयोजन किया। पिछले एक माह से 'दिल्ली मज़दूर यूनियन', 'करावलनगर मज़दूर यूनियन', 'दिल्ली मेट्रो रेल ठेका कामगार यूनियन', 'उद्योगनगर मज़दूर यूनियन', 'मंगोलपुरी मज़दूर यूनियन', 'वज़ीरपुर कारख़ाना मज़दूर यूनियन', 'उत्तर-पश्चिमी दिल्ली मज़दूर यूनियन' व 'स्त्री मज़दूर संगठन' दिल्ली के मज़दूरों का माँगपत्रक आन्दोलन चला रहे थे। इस आन्दोलन में दिल्ली के समस्त असंगठित ठेका मज़दूरों का एक माँगपत्रक तैयार किया गया था। इस 13-सूत्रीय माँगपत्रक में ठेका प्रथा के उन्मूलन, न्यूनतम मज़दूरी लागू करवाने, मज़दूर हेल्पलाइन शुरू करवाने, और अन्य सभी श्रम क़ानूनों को लागू करवाने की माँग शामिल थी। दिसम्बर 2013 में केजरीवाल के नेतृत्व में आम आदमी पार्टी की सरकार बनी थी, जिसने चुनाव से पहले वायदा किया था कि दिल्ली के सभी नियमित प्रकृति के कामों में लगाये गये ठेका मज़दूरों को स्थायी किया जायेगा और दिल्ली से ठेका प्रथा समाप्त की जायेगी। साथ ही केजरीवाल और आम आदमी पार्टी ने यह वायदा किया था कि श्रम विभाग के कर्मचारियों की संख्या को बढ़ाकर दिल्ली में श्रम क़ानूनों के सख़्ती से अमल को भी सुनिश्चित किया जायेगा। लेकिन सरकार बनने के लगभग डेढ़ माह बीत जाने के बाद भी केजरीवाल सरकार को मज़दूरों से किये गये वायदे याद नहीं आ रहे थे। व्यापारियों, ठेकेदारों और मालिकों की सभाओं और बैठकों में केजरीवाल लगातार आ-जा रहे थे; उन्हें राहत देने के लिए तमाम कदम उठा रहे थे; लेकिन दिल्ली के करीब 52 से 55 लाख ठेका मज़दूरों से किये गये वायदे 'आप' की सरकार भूल गयी थी। माँगपत्रक आन्दोलन इन्हीं वायदों को केजरीवाल सरकार को याद दिलाने और उन्हें पूरे करवाने के लिए चलाया जा रहा था।

एक माह तक दिल्ली मज़दूर यूनियन और अन्य यूनियनों ने दिल्ली के तमाम औद्योगिक क्षेत्रों, मज़दूर बस्तियों और झुग्गी-झोपड़ी कालोनियों में सभाएँ आयोजित कीं, पर्चे बाँटे, पोस्टर लगाये, घर-घर जनसम्पर्क अभियान चलाया। मज़दूरों को बताया गया कि दिल्ली राज्य के सभी मज़दूर एकजुट होकर 6 फरवरी को केजरीवाल सरकार का घेराव कर रहे हैं। प्रचार अभियान में मज़दूरों को उनके क़ानूनी हक़ों से अवगत कराया गया, 'आप' पार्टी द्वारा किये गये वायदों के बारे में बताया गया, और यह बताया गया कि अब केजरीवाल सरकार किस तरह से उन वायदों से मुँह चुरा रही है। मज़दूरों का आह्वान किया गया कि वे केजरीवाल सरकार को अपने वायदों से भागने न दे। करावलनगर, खजूरी, मुस्तफ़ाबाद, वज़ीरपुर, मंगोलपुरी, उद्योगनगर, बादली, बवाना, शाहाबाद डेरी, नरेला, भोरगढ़, झिलमिल, मायापुरी, नारायणा समेत दिल्ली के अनेक औद्योगिक क्षेत्रों में सघन प्रचार अभियान चलाया गया। साथ ही, दिल्ली मेट्रो रेल के मज़दूरों के बीच भी निरन्तर प्रचार अभियान जारी रहा।

मज़दूर महासभा के लिए अभियान और 6 फरवरी को मज़दूर महासभा का आयोजन

इस प्रचार अभियान के तहत यह भी बताया गया कि केजरीवाल सरकार अब ठेका प्रथा उन्मूलन करने के वायदे से भाग रही है। पहले तो आम आदमी पार्टी ने अपने चुनावी घोषणापत्र में ठेका प्रथा के उन्मूलन की बात की थी। जब सरकार बन गयी तो केजरीवाल केवल सरकारी उपक्रमों में ठेका प्रथा ख़त्म करने की बात कहने लगा। और अब सरकारी क्षेत्रों के ठेका मज़दूरों से भी वायदे से मुकर रहा है। ठेके के सैकड़ों शिक्षकों को केजरीवाल ने हड़ताल वापस लेने

(पेज 7 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

चन्द्रशेखर आज़ाद

का शहादत दिवस

27 फ़रवरी –1931

शहादत थी हमारी इसलिए
कि आज़ादियों का बढ़ता हुआ सफ़ीना
रुके न एक पल को
मगर ये क्या?
ये अँधेरा, से कारवाँ रुका क्यों है
चले चलो कि अभी
काफ़िला–ए–इन्क़लाब को
आगे, बहुत आगे जाना है

आपस की बात

''पार्टी आप'' ''पार्टी आप''

डाल माल प्रवचन सुनाये
गाल बजाये तोंद फुलाये

बुद्धि के ठेकेदार
ढंग कुढंगी बेढब संगी

चोली दामन का साथ।
जेपी लोहिया की कब्र उखाड़

टेम्प्रेचर का लेकर नाप
क्रान्ति होगी मोमबत्ती छाप

घालमेल और मेल मिलाप
सुविधाओं का करती जाप

पार्टी आप! पार्टी आप!!
आदमी छोटा, आदमी छोटा

खड़ा साथ में इसके मोटा
दाढ़ी, झोंटा, सोंटा।

बोलो कितना दोगे दान?
बनवा दूँगा आदमी आम।

पहनो टोपी झूमो गोपी
सेट हो गयी रोटी–बोटी।

– रामनारायाण भाई
मुजफ्फरपुर, बिहार

बिगुल में लेखों में तथ्यों पर ध्यान दें

प्रिय मज़दूर बिगुल के साथी, दिसम्बर 2013 का अंक प्राप्त हुआ। मैं आपसे अपील करता हूँ कि मज़दूर बिगुल में लेख छापने से पहले उस पर निगाह डाल लिया कीजिये। संजय श्रीवास्तव का जो लेख 16 नम्बर पेज पर छपा है उसका शीर्षक है ''विकास'' की चमक के पीछे की काली सच्चाई, देश में प्रतिदिन भूख और कुपोषण से मर जाते हैं 3000 बच्चे। मज़दूर बिगुल की पुस्तिका बोलते आँकड़े चीखती सच्चाइयाँ में पेज नम्बर 5 में लिखा है कि प्रतिदिन लगभग 9 हज़ार बच्चे भूख और कुपोषणजनित बीमारियों से मरते हैं।

– विशाल, लुधियाना

(प्रिय साथी विशाल, बिगुल पुस्तिका में दिया गया प्रतिदिन लगभग 9 हज़ार बच्चों की मौत का आँकड़ा सही है। दिसम्बर 2013 अंक के लेख में प्रतिदिन भूख और कुपोषण से 3000 बच्चों की मौत का आँकड़ा वह है जिसे पहली बार खुद प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने स्वीकार किया था। वरना तो सरकार इससे इन्कार ही करती रही है। इस बात का ज़िक्र लेख में नहीं होने से भ्रम हुआ। इस चूक की ओर ध्यान दिलाने के लिए धन्यवाद। – सम्पादक)

सही ढंग से लड़ने की समझ बनाता है बिगुल

मज़दूर बिगुल पढ़ना मुझे अच्छा लगता है क्योंकि मज़दूर बिगुल से हमें बहुत कुछ सीखने-समझने को मिलता है जैसे देश की आर्थिक-राजनीतिक मसलों के बारे में सही निचोड़ मिलता है।

मज़दूर आन्दोलनों की प्राप्तियों-अप्राप्तियों, कमियों-कमज़ोरियों के बारे में सही जानकारी मिलती है।

दुनिया भर का जो मज़दूर वर्ग का इतिहास है उसकी रोशनी से आज भारत के मज़दूर वर्ग को रास्ता दिखाता है। दुनिया भर में पूँजीवाद-साम्राज्यवाद की जो मार मज़दूर वर्ग पर पड़ रही है उसका निचोड़ और मज़दूर वर्ग को आगे का रास्ता दिखाता है। मज़दूर वर्ग को किन-किन माँगों पर उन्हें संगठित किया जाये इसकी मज़दूर बिगुल पढ़ने वालों की समझ बनती है।

– विशाल, लुधियाना

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"
– लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता। बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये। सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

एक बेहद ज़रूरी बिगुल पुस्तिका

फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?

प्रकाशक: राहुल फ़ाउण्डेशन
पृष्ठ: 64, मूल्य 20 रुपये
अपनी प्रति डाक से मँगाने के लिए सम्पर्क करें:
जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
फोन: 0522-2786782, 8853093555
ईमेल: info@janchetnabooks.org, janchetna@rediffmail.com
वेबसाइट: **janchetnabooks.org**

मज़दूर बिगुल की नयी वेबसाइट
आप यहाँ देख सकते हैं:
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकायें उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

- **डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522-2786782**
- **जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे)**
- **जाफ़रा बाज़ार, गोरखपुर-273001**
- **जनचेतना, दिल्ली – फ़ोन : 09910462009**
- **जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807**

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 0522-2335237
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित)

केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों और "क्रान्तिकारी-इंकलाबी कॉमरेडों" की निम्नस्तरीय एकता ने रची आन्दोलन की विफलता की त्रासदी!

मारुति सुजुकी मज़दूरों की "जनजागरण पदयात्रा" जन्तर-मन्तर पर रस्मी कार्यक्रम के साथ समाप्त हुई

31 जनवरी को मारुति सुजुकी वर्कर्स यूनियन के मज़दूर और उनके परिवारजन कैथल से पदयात्रा चलाते हुए नई दिल्ली के जन्तर-मन्तर पहुँचे। यहाँ यूनियन तथा मज़दूरों के परिजनों ने राष्ट्रपति को ज्ञापन सौंपा जिसमें उन्होंने माँग की है कि पिछले 18 महीने से जेल में बन्द 148 बेगुनाह मज़दूरों को रिहा किया जाये तथा बर्खास्त मज़दूरों की बहाली की जाये। ज़ाहिर तौर पर बिगुल मज़दूर दस्ता मज़दूरों पर चल रहे राजकीय दमन और प्रबन्धन की तानाशाही के ख़िलाफ़ मारुति मज़दूरों के साथ खड़ा है। साथ ही 'बिगुल' एक बार फिर इस आन्दोलन के बारे में अपने समीक्षा-समाहार को पाठकों के सामने रखना चाहेगा ताकि मज़दूर आन्दोलन भविष्य के संघर्षो में भ्रमों-भटकावों से मुक्त हो सके। वैसे ज्यादातर मारुति मज़दूर भी जानते हैं कि जन्तर-मन्तर पर हुआ कार्यक्रम सिर्फ एक धरना-प्रदर्शन की रस्मादयगी रह गया इसलिए अधिकांश मज़दूर एक फिर निराश होकर घर लौट गये।

जन्तर-मन्तर कार्यक्रम की रपट: मारुति मज़दूर व उनके परिवार जन 300 किलोमीटर की लम्बी यात्रा करते हुए 31 जनवरी को दिल्ली पहुँचे। एक दिवसीय धरने का कार्यक्रम लेकर वे ऐसे समय राष्ट्रीय राजधानी पहुँचे जब भारत सरकार जापान के प्रधानमंत्री शिंजो एबे को पूरे आदर-सत्कार के साथ गणतंत्र दिवस पर मुख्य अतिथि बनाकर जापानी पूँजी के साथ अपने रिश्तों को बेहतर करने की तैयारी में लगी हुई है। जन्तर-मन्तर पर गुड़गांव की 16 सदस्यीय कमेटी के एटक, सीटू, मुकू के पदाधिकारियों समेत विभिन्न संगठनों के लोग भी शामिल थे जो अपने लम्बे-चौड़े भाषणों से मज़दूरों को सिर्फ आश्वासन ही दे रहे थे। कार्यक्रम में छोटे मदारियों के बीच एक बड़ा मदारी भी धरना स्थल पर आ पहुँचा। ये थे आम आदमी पार्टी के रणनीतिकार योगेंद्र यादव, जिनको शायद याद आया हो कि हरियाणा चुनाव के वोटरों की जनसभा को सम्बोधित करने का बढ़िया मौका है। वैसे योगेन्द्र यादव अपनी सारी सहानुभूति मारुति सुजुकी के मृत मैनेजर अवनीश देव को पहले ही समर्पित कर चुके थे। मारुति मज़दूरों को उन्होंने नसीहत दी कि मारुति मज़दूर हत्या के दोषी है इसलिए उन्हें सख़्त सज़ा होनी चाहिए, दूसरे मज़दूरों को हिंसा के लिए माफी माँगनी चाहिए। तभी मज़दूरों को न्याय की माँग उठानी चाहिए। साफ़ है कि योगेन्द्र यादव के चुनावी भाषण से हरियाणा के पूँजीपति-मालिक ज़रूर खुश हुए होंगे लेकिन मज़दूर के लिए तो ये जले पर नमक छिड़कना था। "आम आदमी" बनने वाले योगेन्द्र यादव ने मारुति में हुई "हिंसा" के कारण के बारे में एक शब्द नहीं बोला। जबकि ज्ञानी योगेन्द्र यादव को पता ही होगा कि देश के जेलरूपी कारख़ानों में मज़दूर कैसे गुलामों की तरह खटते हैं। क्या ये हिंसा नहीं है? देश में रोज़ाना दर्जनों मज़दूर मालिकों के मुनाफे की हवस के चलते मौत का शिकार होते हैं, तब 'आप' के योगेन्द्र यादव कितने मालिकों को सज़ा दिलवाने और माफी माँगने के लिए धरना देते हैं। योगेन्द्र यादव के मज़दूर विरोधी बयान पर पत्रकार पाणिनी आनन्द ने तीखी प्रतिक्रिया करते हुए 'आप' के मज़दूर विरोधी चरित्र पर बोलना शुरू ही किया था कि यूनियन के नेतृत्व व संचालक ने ही पाणिनी आनन्द को बात रोकने के लिए कह दिया।

'आप' के योगेन्द्र यादव ने मंच से मज़दूरों को नसीहतें और थोथे आश्वासन दिये और फिर डेढ़ साल से क़ैद मज़दूरों के परिवारों की रोती हुई स्त्रियों को बुर्जुआ नेताओं के अन्दाज़ में चन्द सेकण्ड में दिलासा देकर बगल में चल रहे एनजीओ वालों के कार्यक्रम की ओर बढ़ लिये। मगर आयोजक उनके आने को ही उपलब्धि मानकर बखान कर रहे हैं।

साफ है कि चुनावी मदारियों के वादों से मारुति मज़दूरों को कुछ हासिल नहीं होने वाला है लेकिन इस घटना ने एम.एस.डब्ल्यू.यू. के नेतृत्व के अवसरवादी चरित्र को फिर सामने ला दिया, जिनके मंच पर मज़दूरों को बिना जाँच-सबूत हत्या का दोषी ठहराने वाले योगेन्द्र यादव को कोई नहीं रोकता लेकिन मज़दूरों का पक्ष रखने वाले पत्रकार-समर्थक को रोक दिया जाता है। शायद मारुति मज़दूरों का नेतृत्व आज भी मज़दूरों की ताक़त से ज्यादा चुनावी दलालों से उम्मीद टिकाये बैठे है। तभी मारुति सुजुकी वर्कर्स यूनियन के मंच पर सीपीआई, सीपीएम से लेकर आप के नेता भी मज़दूरों को बहकाने में सफल हो जाते हैं।

इसलिए आज हमें मारुति मज़दूरों के आन्दोलन की विफलता के पीछे के कारणों की पहचान करनी होगी वरना हम भविष्य में भी ऐसे आन्दोलन की ताक़त और ऊर्जा को चुनावी पार्टियों और दलाल ट्रेड यूनियनों की गोद में सौंपते रहेंगे। मारुति आन्दोलन की विफलता का सबसे बड़ा कारण था, यूनियन नेतृत्व का अवसरवादी चरित्र जो कभी भी सही समय पर सही रणनीति और फैसला नहीं ले सका। साथ ही यूनियन नेतृत्व "प्रधानी" की संस्कृति का पालन करते हुए मीटिंगों में मज़दूरों को केवल "क्रान्तिकारी-इंकलाबी कामरेडों" का फैसला सुनाता है जो यूनियन के नेतृत्व के साथ बन्द कमरों में गुपचुप तरीके से पहले ही बना लिये जाते हैं। ट्रेड यूनियन जनवाद कहीं भी लागू नहीं किया जाता ताकि आम सभा में तमाम सहयोगी संगठनों के राय-सुझाव रखने के बाद मज़दूर स्वयं निर्णय लेने समक्ष हो सकें। लेकिन ये " क्रान्तिकारी-इंकलाबी कामरेड" मज़दूरों के "स्वतस्फूर्त" फैसला लेने की क्षमता को बाधित नहीं करना चाहते थे। इसलिए इन "क्रान्तिकारी-इंकलाबी कामरेडों" ने नेतृत्व को सलाह दी की आम सभा में 'बिगुल' के प्रवक्ताओं के बोलने पर रोक लगा दी जाये। इसकी वजह बस यही है कि बिगुल मज़दूर दस्ता के साथी हमेशा आन्दोलन में आगे के रास्ते पर अपनी ठोस राय रखते रहे हैं जो कि " क्रान्तिकारी-इंकलाबी कामरेड" के संकीर्ण सांगठनिक हितों के लिए खतरा है। क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य आन्दोलन को सफल बनाना नहीं बल्कि किसी भी कीमत पर गुड़गाँव-मानेसर के केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के गैंग में शमिल होना है। तभी तो " क्रान्तिकारी-इंकलाबी कामरेड" केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की गद्दारी पर एक शब्द भी नहीं बोलते। साफ है कि केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों और क्रान्तिकारी-इंकलाबी कामरेडों" की निम्नस्तरीय एकता या अपवित्र गठबन्धन ने गुड़गाँव के मज़दूर आन्दोलन को कारख़ाने की चौहद्दी में बाँधे रखने पर मौन सहमति बना ली है। दूसरी तरफ मारुति का यूनियन नेतृत्व भी अवसरवादी तरीके से केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों से लेकर चुनावी पार्टियों के दलालों तक से लाभ उठाने की कोशिश में लगा रहता है जबकि ज़्यादातर मज़दूर भी जानते हैं कि आज केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों का मुख्य धन्धा ही यही है कि कैसे मज़दूर आन्दोलन के आक्रोश की धार कुन्द की जाये। ये कुछ बुनियादी कारण हैं जो मारुति आन्दोलन की विफलता के लिए जिम्मेदार हैं। इन कारणों को दूर किये बिना हम भविष्य के संघर्षो की तैयारी नहीं कर सकते है।

– अजय

मैट्रिक्स क्लोथिंग, गुड़गाँव में मजदूरों के हालात!

गुड़गाँव की 'मैट्रिक्स क्लोथिंग प्रा. लि.' कम्पनी (खाण्डसा रोड मोहम्मदपुर गाँव) के मालिक दो पार्टनर है। कम्पनी की दो और शाखाएँ है, जो कि गुड़गाँव सेक्टर 37 औद्योगिक क्षेत्र मे स्थित है। यह कम्पनी मुख्यत: रीबॉक, टिम्बरलैण्ड, पोलो, जोश ए बैंक, मेड जैसी विशालकाय कम्पनियों के लिए कपड़े बनाती है। इस कम्पनी की मुख्य शाखा दिल्ली के औद्यौगिक क्षेत्र मायापुरी इलाके में है। 1990 मे जब हरियाणा मे औद्यौगिक क्षेत्र बसने शुरू हुए तभी यह कम्पनी भी 1995-96 के आसपास हरियाणा के सुनसान, वीरान इलाका मोहम्मदपुर मे जा बसी। कम्पनी के पुराने मज़दूर बताते है कि पहले यहाँ बहुत लूटपाट होती था।

आइये अब आपको बताते हैं कि कम्पनी के अन्दर के हालात क्या हैं। एक ही बाउण्ड्री में तीन बिल्डिंगें और हर बिल्डिंग की चारों मंजिलों में कपड़े सिलाई का ही काम होता है मगर तीनो बिल्डिंगों के मज़दूरों के बीच कई दीवारें खड़ी है। जैसे- बिल्डिंग ए से बी में कोई मज़दूर नही जा सकता है और वैसै ही बी से सी या सी से ए बिल्डिंग मे कोई मज़दूर नही जा सकता । हर मज़दूर की हाजिरी, उसकी तनख्वाह और उसके प्रोडक्शन) का हिसाब भी उसके अपने कार्यक्षेत्र मे ही होगा। धुलाई डिपार्टमेण्ट अलग है। सभी कार्यक्षेत्रों के कपड़े एक साथ धोये जाते हैं। इस पूरी कम्पनी मे लगभग चार हजार मज़दूर काम करते हैं। मेरी बिल्डिंग के चारो डिपार्टमेण्ट मे लगभग (1178) मज़दूर काम करते हैं। इस कम्पनी के अन्दर हेल्पर और कारीगर की तनख्वाह लगभग बराबर ही है। चाहे नया हो य पुराना, हेल्पर-5342, कारीगर-5470, और इस कम्पनी मे ठेकेदार की जो लेबर हैं उनकी हालत तो और बुरी है। (पुरुष हेल्पर-4500, महिला हेल्पर-4200)। कहने को इस कम्पनी मे जगह-जगह बोर्ड लगे हुए हैं। जो कि मज़दूरों को उनके श्रम कानूनों, उनके यूनियन बनाने के अधिकार से परिचित कराते रहते हैं। मगर सारे श्रम कानूनों की धज्जियाँ उड़ती रहती हैं। और रही बात यूनियन बनाने की तो ब्रम्हा जी भी वहाँ यूनियन नहीं बना सकते। श्रम कानूनों मे से एक श्रम कानून का बोर्ड हमको यह बताता है। कि आपसे (किसी भी वर्कर से) एक हफ्ते मे 60 घण्टे से ज्यादा कोई काम नहीं ले सकता और ओवरटाइम का दोगुने रेट से भुगतान होगा। इसके उलट व्यवहार मे कम्पनी का नियम यह है कि ओवरटाइम लगाने से कोई मना नहीं कर सकता अगर सण्डे को कम्पनी खुली है तो भी आना पड़ेगा। कम्पनी की इसी मनमानी के चलते अधिकतर मज़दूर काम छोड़ते रहते हैं। और जो नही छोड़ते वो बीमार होकर मजबूरी मे गाँव की राह देखते हैं (सितम्बर 2013 मे 3 मज़दूरों ने छाती दर्द) की वजह से गाँव जाने की छुट्टी ली। अक्टूबर मे 5 नए मज़दूरों ने काम छोड़ दिया। उनकी तबीयत नहीं साथ दे रही थी। जिसमे एक को तो टायफाइड हो गया और एक यह बता रहा था। कि फैक्ट्री के अन्दर जाते हैं तो चक्कर सा आने लगता है व उल्टी सी होने लगती है। खैर ये आँकड़े तो आँखो देखे व कानों सुने हैं, असल हकीकत तो इससे भी भयंकर है ।

रही बात ओवरटाइम दोगुने रेट से देने की तो उस हिसाब से 51.50 पैसे प्रति घण्टा का रेट बनता है मगर सभी को 40रू प्रति घण्टा की दर से भुगतन किया जाता है। ये कम्पनी के परमानेण्ट (स्थाई) लेवर के हाल हैं। ठेकेदार की लेबर के हाल और भी बुरे हैं।

कम्पनी मज़दूरों को यह बताने के लगातार अभियान चलाती रहती है कि बजट क्या है, अपनी आय कैसे बढ़ायी जा सकती है, आप बचत कैसे कर सकते हैं। और उस बचत से सूखे, कंगाल मज़दूरों को करोड़पति बनने के सपने दिखाए जाते हैं। इन तमाम अभियानों को चलाने के लिए कम्पनी ने पर्सनल डिपार्टमेण्ट बना रखा है जिसका मुख्य काम यही है कि मज़दूरों को एक होने से कैसे रोका जाये।

– आनन्द, गुड़गाँव

मानवीय अंगों की तस्करी का फैलता कालाबाज़ार

अमीरों के लिए अंगों के स्पेयर पार्ट की दुकानें नहीं हैं ग़रीब!

डा. अमृत

एक दशक पहले काफी चर्चा में रहे बदनाम अमृतसर गुर्दा काण्ड के मामले में 11 वर्ष के लम्बे इन्तज़ार के बाद पिछले साल नवम्बर में अदालती फैसला आया और ज़िला न्यायालय ने छह लोगों को दोषी करार दिया। इन में से पाँच डाक्टर हैं जिन्हें पाँच-पाँच वर्ष की कैद की सजा सुनायी गई है; छठा पुलिस मुलाज़िम है जिसे गुर्दा लगाया गया था और उसे आठ साल की कैद हुई है। अभी इसी मामले से सम्बन्धित दूसरे केसों में फैसला आना बाकी है, जिनमें शिकायतकर्ता के कत्ल का मामला भी शामिल है। 11 वर्ष तक लटकने के बाद आया फैसला भी टिकेगा या नहीं, यह भी पक्का नहीं है क्योंकि अपराधी "बड़े लोग" हैं और बड़े लोगों की सुविधा के लिए भारतीय न्याय-क़ानून सब इन्तजाम किये रहता है। अब यह मामला उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के गलियारों के चक्कर काटेगा और तब तक हो सकता है कि 11 की जगह 22 वर्ष बीत जायें।

यह मामला 2002 में तब सामने आया था जब पंजाब के एक कस्बे सिधवाँ बेट के रहने वाले बगीचा सिंह ने पुलिस के पास ज़बरदस्ती गुर्दा निकाले जाने की शिकायत दर्ज करायी। बगीचा सिंह तब 17 वर्ष का नाबालिग था जब उसे एक दलाल बलजीत सिंह उर्फ विक्की मिला जो उसे एक गुर्दा देने के बदले 40,000 रुपये दिलवाने का वायदा करके हरियाणा पुलिस के सिपाही सुरेश कुमार के पास चंडीगढ़ ले गया। यहाँ आने के बाद जब बगीचा सिंह का मन बदल गया तो उसे डरा-धमकाकर उससे खाली कागज़ों पर राजू नाम से हस्ताक्षर करवा लिये गये और पूरे मामले को अंगदान को मंज़ूरी देने वाली कमेटी से पास करवा लिया गया। इस कमेटी के मेम्बर तब अमृतसर के सरकारी मेडीकल कालेज का प्रिंसिपल डा. ओ.पी. सरीन तथा इसी कालेज के फोरेन्सिक मेडिसिन विभाग के प्रमुख डा. जगदीश गार्गी थे जिन्होंने इस पूरे कारोबार का क़ानूनी पक्ष ठीक रखने का जिम्मा सँभाला हुआ था। फिर बगीचा सिंह को जालन्धर के न्यू रूबी अस्पताल ले जाया गया जहाँ उसका गुर्दा निकालकर सुरेश कुमार को लगाने का आपरेशन तीन डाक्टरों - अरजिन्दर सिंह, ए.एस. भूटानी तथा अस्पताल के मालिक एसपीएस ग्रोवर ने किया। कुछ समय के बाद जब बगीचा सिंह ने अपने घरवालों को पूरी बात बतायी, तो उसके पिता ने पुलिस के पास मामला दर्ज कराया। जब इस मामले की जाँच शुरू हुई तो करोड़ों का काला धन्धा सामने आया।

जाँच शुरू होने के कुछ समय बाद बगीचा सिंह की एक रहस्यमय सड़क दुर्घटना में मौत हो गयी, बगीचा सिंह का पिता ही गवाही से मुकर गया और जालन्धर पुलिस ने डाक्टरों को क्लीनचिट दे दी। कई बड़े लोगों के नाम इस मामले के साथ जुड़े, लेकिन इन नामों को जनता की नज़रों से छुपा दिया गया। मामले की पैरवी कर रहे वकील ए. के. सलवान तथा उनके परिवार को धमकियाँ मिलती रहीं। सरकार की बेशर्मी देखिए, अपराधी विधायकों या कुर्सी तोड़ने वाले मन्त्रियों की सुरक्षा पर करोड़ों खर्च करने वाली सरकार ने वकील की सुरक्षा के लिए एक "सिपाही" नियुक्त किया और परिवार को सुरक्षा देने से किनारा कर लिया। दूसरी तरफ, इस काले धन्धे में लगे डाक्टरों को "तरक्की" भी मिलती रही। डा. गार्गी को अमृतसर मेडिकल कालेज का प्रिंसिपल बनाया गया, यहाँ तक कि वह पंजाब मेडिकल शिक्षा एवं खोज विभाग का डायरेक्टर भी हो गये। फिर रिटायर होने के बाद इन महोदय की "सेवाओं" को देखते हुए इनको बाबा फरीद मेडिकल युनिवर्सिटी ने फरीदकोट स्थित मेडिकल कालेज में फोरेंसिक विभाग का मुखिया नियुक्त किया, यहाँ भी इनका "काम" सुर्खियों में रहा। अब चाहे न्यायालय ने कुछ लोगों को 5-6 वर्ष की सजा सुनायी है, मगर यह साँप की लीक पीटने से ज़्यादा कुछ नहीं। यह राज्यसत्ता के एक अंग के द्वारा दूसरे अंग की करतूतों को ढँकने तथा जनता की आँखों में धूल झोंकने से बढ़कर कुछ नहीं है। ऐसे लोगों के ख़िलाफ़ जाँच को लटकाने, उन्हें अहम पदों पर विराजमान करने वालों तथा डाक्टरों को क्लीनचिट देने वालों का कुछ नहीं बिगड़ेगा।

दुनिया में सर्वप्रथम दिल बदलने का सफल आपरेशन करने वाले डा. क्रिश्चियन बर्नार्ड ने एक बार कहा था: "जब इलाज बिज़नेस बन जायेगा, तब लोगों को बिना ज़रूरत के दवाएँ दी जायेंगी, और बिना ज़रूरत के लोगों की टांगें भी काटी जायेंगी।" लेकिन शायद उन्होंने भी यह कल्पना नहीं की होगी कि उन्हीं के द्वारा विकसित की जा रही मानवीय अंग बदलने की चिकित्सा विधि को भी मुनाफ़ाख़ोर न सिर्फ बिज़नेस, बल्कि कालाबाज़ारी बना देंगे और मानवीय अंगों की तस्करी होने लगेगी। अमृतसर में सामने आया यह गुर्दाकाण्ड दुनिया में तो क्या, भारत में भी इस तरह का कोई पहला मामला नहीं है। 1993 में मुम्बई में मानवीय गुर्दों के क्रय-विक्रय का धन्धा सामने आया और कुमार राऊत नाम के दलाल को पुलिस ने पकड़ा भी था, मगर में यह व्यक्ति पुलिस की हिरासत से "भाग" निकला। 1995 में मुम्बई में ही एक और ऐसा ही मामला प्रकाश में आया। 2003 में अमृतसर में गुर्दों की तस्करी का मामला सामने आया। 2006 में तमिलनाडु में यही धन्धा पकड़ा गया। यहाँ पर सुनामी में तबाही का शिकार हुए लोगों के गुर्दे निकाल कर बेचे जा रहे थे। चेन्नई के उत्तर में बसे सुनामी-पीड़ितों के एक कैम्प 'एर्नावूर' में 90 लोगों के गुर्दे निकाले जाने का मामला सामने आया। स्थानीय लोगों में इस कैम्प को "गुर्दाघाटी" कहा जाता था। जाँच-पड़ताल के दौरान 52 अस्पतालों के नाम इस मामले से जुड़े और कई अस्पताल इसके बाद बन्द भी हुए। 2008 में गुड़गाँव में एक और बड़ा मामला सामने आया। अमित कुमार नाम का मानवीय अंगों की तस्करी करने वाला सरगना आठ राज्यों तक फैले गुर्दा-कारोबार को चला रहा था। जब इसे 2008 में नेपाल से पकड़ा गया, तो जाँच के दौरान पता चला कि यह आदमी मुम्बई का कुमार राऊत ही है। अदालत में इसे कुछ सालों की सजा हुई, मगर सीबीआई "सबूत" पेश नहीं कर पायी, नतीजतन यह सरगना छूट गया।

पूरी दुनिया में शायद ही कोई ऐसा देश होगा यहाँ पर इस अमानवीय कारोबार के मामले सामने नहीं आया। बस फर्क इतना है कि ग़रीब तथा तीसरी दुनिया के देशों में यह काला धन्धा कहीं ज़्यादा फैला हुआ है। लातिनी अमरीका के देश जैसे निकारागुआ, पेरू, कोलंबिया, इक्वेडोर, ब्राजील से लेकर भूतपूर्व सोवियत गणराज जैसे बेलारूस, अजरबैजान, मोल्दोवा आदि और एशियाई देश जैसे फिलीपीन्स, चीन, बंगलादेश, पाकिस्तान, भारत आदि तक इस काले बाज़ार के तार फैले हुए हैं। ये देश एक तरफ आधुनिक चिकित्सा तकनीक और सुविधाएँ रखते हैं, दूसरी तरफ यहाँ पर आबादी का बड़ा हिस्सा ग़रीब, बदहाल है, जिस के चलते मानवीय अंगों के तस्करों के लिए अपने शिकार ढूँढ़ना ज़्यादा मुश्किल नहीं है। इसके अलावा यहाँ कहीं भी किसी प्राकृतिक आपदा या फिर युद्ध से तबाही के चलते लोग अपने जीविका के संसाधनों से उजड़ जाते हैं और भूख, बेघरी का शिकार हो जाते है, वे जगहें मानवीय अंगों के तस्करों का अड्डा बन जाती हैं। सुनामी से दक्षिण भारत में हुई तबाही के बाद वहाँ यह काला धन्धा कैसे फैला, इस का ज़िक्र हमने ऊपर किया है। सोवियत संघ टूटने के बाद बहुत से गणराज्यों में मानवीय अंगों के व्यापार का तेज़ी से फैलाव हुआ है। हालत यहाँ तक पहुँची हुई है कि बेलारूस जैसे भूतपूर्व सोवियत गणराज्यों में तो अख़बारों में सरेआम विज्ञापन छपते हैं और यहाँ से गुर्दा या कोई और अंग बेचने के लिए तैयार हुए व्यक्ति को किसी दूसरे देश, आम तौर पर लातिनी अमरीका के देश जैसे पेरू, कोलम्बिया आदि ले जाया जाता है और वहीं पूरा आपरेशन करने के बाद उसे अपने देश छोड़ दिया जाता है। आपरेशन के बाद अगर कोई दिक्कत अंग देने वाले व्यक्ति को आती है तो वह पूरी तरह से लावारिस छोड़ दिया जाता है। साम्राज्यवादी हमले से तबाह हुआ इराक और साम्राज्यवादियों की चालों का शिकार सीरिया, सीरिया से विस्थापित शरणार्थियों को शरण देने वाला लेबनान आजकल मानवीय अंगों के तस्करों के कारोबार के मुख्य अड्डे बने हुए हैं।

अगर आँकड़ों की बात की जाये तो पूरी दुनिया में इस अमानवीय धन्धे का बिजनेस 1.2 अरब डालर यानि 60 अरब रुपए प्रति वर्ष से ऊपर का है। मानवीय अंगों की तस्करी में सबसे ज़्यादा गुर्दों की तस्करी होती है क्योंकि हरेक आदमी में दो गुर्दे होते हैं और आदमी एक गुर्दे के साथ भी ज़िन्दा रह सकता है। इसके बाद जिगर का नम्बर आता है क्योंकि जिगर एक ऐसा अंग है जो अगर कुछ हिस्सा ख़राब हो जाये या काटकर किसी और को लगा दिया जाये तो यह अपने को फिर से पहले के आकार तक बड़ा कर लेता है। इसके अलावा आँख की पुतली, चमड़ी तथा दिल, तथा फेफड़े के क्रय-विक्रय का धन्धा भी चलता है। पूरी दुनिया में हर वर्ष 66,000 गुर्दा बदलने, 21,000 जिगर बदलने के और 6,000 दिल बदलने के आपरेशन होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबक इनमें से 10 प्रतिशत आपरेशन तो गैर-क़ानूनी होते ही हैं। एक अन्य अध्ययन के अनुसार अंग-बदलने के आपरेशनों में इस्तेमाल हुए मानवीय अंगों में से लगभग 42 प्रतिशत मानवीय अंगों की तस्करी के कारोबार से हासिल किये होते हैं। वर्ष 2007 में, अकेले पाकिस्तान में 2500 व्यक्तियों ने

इन ग़रीबों के गुर्दे धोखे से निकाल कर बेच दिये गये

(पेज 10 परी जारी)

मोदी के विकास के "गुजरात मॉडल" की असलियत

विकास के "गुजरात मॉडल" का ढोल संघी बैण्ड वाले ख़ूब बजाते हैं और मीडिया भी इसका बखान करने में पीछे नहीं रहता। पर तथ्य कुछ और ही कहानी बयान करते हैं।

यह सही है कि गुजरात में राजमार्गों, शॉपिंग मॉल्स, होटलों, औद्योगिक क्षेत्रों और वाणिज्यिक गतिविधियों का विस्तार हुआ है। प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद के मामले में गुजरात और महाराष्ट्र देश में सबसे ऊपर हैं (वैसे भाजपा शासन के पहले भी गुजरात सापेक्षत: विकसित राज्य था)।

पर इस समूचे विकास का दूसरा पहलू यह है कि यह सब मुट्ठीभर उद्योगपतियों, व्यापारियों, धनी किसानों और उच्च मध्यवर्गीय आबादी तक सिमटा हुआ है। गुजरात देश में धनी-ग़रीब के बीच सबसे अधिक अन्तर वाले क्षेत्रों में से एक है। प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद में अग्रणी इस राज्य में बाल कुपोषण 48 प्रतिशत है जो राष्ट्रीय औसत से ऊपर है और इथियोपिया और सोमालिया जैसे दुनिया के अति पिछड़े देशों से भी (वहाँ 33 प्रतिशत है) अधिक है। 'ग्लोबल हंगर इण्डेक्स' के अनुसार, गुजरात भारत के पाँच सबसे पिछड़े राज्यों में आता है। इसकी स्थिति बेहद ग़रीब देश हाइती से भी बदतर है। बाल मृत्यु दर भी गुजरात में 48 प्रतिशत है। भारत में इस मामले में सबसे बदतर राज्यों में इसका दसवाँ स्थान है। गुजरात के एक तिहाई वयस्कों का 'बॉडी मास इण्डेक्स' 18.5 है। इस मामले में यह भारत का सातवाँ सबसे बदतर राज्य है। प्रसव के समय स्त्रियों की मृत्यु की दर भी गुजरात में सबसे ऊपर है।

शिक्षा, स्वास्थ्य और प्रति व्यक्ति आय के मामले में यह देश के आठ राज्यों से पीछे है।

सरकारी मानकों के हिसाब से भी गुजरात में ग्रामीण ग़रीबी की तस्वीर भयावह है। ग्रामीण ग़रीबी वहाँ 51 प्रतिशत है। अनुसूचित जनजातियों में यह 51 प्रतिशत, अनुसूचित जातियों में 49 प्रतिशत और पिछड़ी जातियों में 42 प्रतिशत है।

अभी गुजरात सरकार द्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार जो व्यक्ति शहर में 17 रुपये रोज़ और गाँव में 11 रुपये रोज़ कमा लेता है वह ग़रीब नहीं है! इस पर चारों ओर निन्दा होने के बाद सरकार के एक मंत्री ने फ़रमाया कि गुजरात में दूसरे राज्यों से आये लोगों के कारण ग़रीबी आ गयी है।

औने-पौने दामों में किसानों से ज़मीन लेकर कारपोरेट घरानों को देने के मामले में गुजरात सबसे आगे है। साथ ही उद्योगों को कारपोरेट करों में भारी छूट और सस्ती दरों पर बिजली भी दी जाती है। इन्फ्रास्ट्रक्चर का सारा विकास वहाँ इन्हीं उद्योगपतियों को ध्यान में रखकर किया गया है। इसीलिए गुजरात उद्योगपतियों के लिए पूँजी लगाने की सबसे पसन्दीदा जगह बन गया है।

सरदार सरोवर बाँध के विस्थापित आज तक पुनर्वास की लड़ाई लड़ रहे हैं। उनसे बहुत बड़ी आबादी उन विस्थापित किसानों और आदिवासियों की है जिनकी ज़मीनें सड़कों, उद्योगों, शहरी आवासीय योजनाओं और रिसॉर्ट-होटलों आदि के व्यापक विस्तार ने लील लीं। सरकार ने कौड़ियों के मोल ज़मीन लेकर उद्योगपतियों और बिल्डरों के हवाले कर दी है।

गुजरात में सबसे बदतर स्थिति कारख़ाना मज़दूरों की है। वे एक फासिस्ट आतंकराज में जीते हैं, जहाँ संगठित होने या आवाज़ उठाने की हर कोशिश को बेरहमी से कुचल दिया जाता है। ज़्यादातर मज़दूर असंगठित हैं जिनके लिए श्रम क़ानूनों का कोई भी मतलब नहीं है। आप्रवासी मज़दूरों की बहुतायत है जो नारकीय स्थितियों में ज़िन्दगी बसर करते हैं। उनकी झुग्गी-बस्तियों में कहीं भी उस 'वाइब्रेंट गुजरात' का साया तक नहीं दिखता, जिसका विज्ञापन मोदी अमिताभ बच्चन से करवाते हैं और पैसे वालों को गुजरात घूमने आने के लिए न्यौतते हैं। मज़दूरों पर क़ायम यह आतंक राज ही आज भारतीय उद्योगपतियों को यह सोचने को प्रेरित कर रहा है कि मोदी यदि देश के प्रधानमंत्री बन गये तो बिना किसी श्रमिक अशान्ति का सामना किये वे देशभर के मज़दूरों की हड्डियाँ निचोड़ सकेंगे। भारतीय पूँजीवाद के संकट का समाधान इसीलिए उन्हें मोदी के नेतृत्व वाले भाजपा के फासिस्टी आतंकराज में दीख रहा है।

मोदी के भोंपू और चम्पू दावा करते हैं कि 2002 के नरसंहार (जिसको वे "क्रिया की स्वाभाविक प्रतिक्रिया" मानते हैं) के बाद गुजरात में कोई दंगे नहीं हुए। ज़मीनी सच्चाई यह है कि गुजरात की आम मुस्लिम आबादी भीषण आतंक, असुरक्षा और सामाजिक अलगाव के माहौल में जी रही है। शहरों (और कुछ ग्रामीण इलाक़ों तक में) में जो हिन्दू बहुल इलाक़े हैं, वहाँ से अपने मकान-दुकान बेचकर मुस्लिम लोग उन इलाक़ों में चले गये हैं जो मुस्लिम बहुत हैं। मध्यवर्गीय मुस्लिमों को भी अपार्टमेण्ट्स में मालिकाने या किराये की जगह नहीं मिलती। नयी ज़मीनें, प्लॉट या मकान भी उन्हें ख़रीदने में काफ़ी परेशानी आती है। जो ग़रीब मुस्लिम आबादी है, वह गुजरात के शहरों में कहीं एक ओर सघन बसाहटों में पनाह ले रही है। आर्थिक सीमा और सामाजिक पार्थक्य के अतिरिक्त गहरा असुरक्षा-बोध भी इसका कारण है। इस तरह गुजरात में हिन्दू-मुसलमान आबादी का अलगाव अभूतपूर्व ढंग से बढ़ गया है। मुस्लिम आबादी का 'घेटोकरण' हो रहा है।

मोदी वास्तव में देश में "गुजरात मॉडल" लागू करना चाहते हैं। पर वह मॉडल, जैसा वह बताते हैं वैसा नहीं होगा, बल्कि जैसा वास्तव में आज का गुजरात है वैसा होगा। बल्कि उससे भी कहीं अधिक बदतर होगा।

– लीना मेहंदौले

चाय बेचने की दुहाई देकर देश बेचने के मंसूबे

जब लोकरंजकता की लहर चलती है तो तार्किकता का कोई पूछनहार नहीं होता। आजकल मोदी और भाजपाई इस बात को ख़ूब भुना रहे हैं कि मोदी कभी चाय बेचते थे। वे कांग्रेस और मणिशंकर अय्यर पर हमले कर रहे हैं कि उन्होंने मोदी की पृष्ठभूमि की खिल्ली उड़ाई। कुछ सेक्युलर और प्रगतिशील लोग भी कहते मिल रहे हैं कि मोदी की चाय बेचने की पृष्ठभूमि का मज़ाक नहीं उड़ाया जाना चाहिए।

मेरा ख़्याल कुछ जुदा है। यदि कोई चाय बेचने की पृष्ठभूमि को भुनाता है तो उसका मज़ाक जरूर उड़ाया जाना चाहिए। चाय बेचने वाले के प्रधानमंत्री बन जाने से देश में चाय बेचने वालों और तमाम उन जैसों का भला होगा या नहीं, यह इस बात से तय होगा कि राज्यसत्ता का चरित्र क्या है, चाय बेचने वाले की पार्टी की नीतियाँ क्या हैं! जैसे तमाम पिछड़ी चेतना के मजदूरों को यदि सत्ता सौंप दी जाये, तो समाजवाद नहीं आ जायेगा! समाजवाद वह हरावल पार्टी ही ला सकती है जो क्रान्ति के विज्ञान को, समाजवाद की अर्थनीति और राजनीति को समझती हो!

केवल किसी की व्यक्तिगत पृष्ठभूमि ग़रीब या मेहनतकश का होने से कुछ नहीं होता। बाबरी मस्जिद ध्वंस करने वाली उन्मादी भीड़ में और गुजरात के दंगाइयों में बहुत सारी लम्पट और धर्मान्ध सर्वहारा-अर्धसर्वहारा आबादी भी शामिल थी। दिल्ली गैंगरेप के सभी आरोपी मेहनतकश पृष्ठभूमि के थे। भारत की और दुनिया की बुर्जुआ राजनीति में पहले भी बहुतेरे नेता एकदम सड़क से उठकर आगे बढ़े थे, पर घोर घाघ बुर्जुआ थे। कई कांग्रेसी नेता भी ऐसे थे। चाय बेचने वाला यदि प्रधानमंत्री पद का प्रत्याशी है और इतिहास-भूगोल-दर्शन-सामान्य ज्ञान – सबकी टाँग तोड़ता है तो एक बुर्जुआ नागरिक समाज का सदस्य भी उसका मज़ाक उड़ाते हुए कह सकता है कि वह चाय ही बेचे, राजनीति न करे। चाय बेचने वाला यदि एक फासिस्ट राजनीति का अगुआ है तो कम्युनिस्ट तो और अधिक घृणा से उसका मज़ाक उड़ायेगा। यह सभी चाय बेचने वालों का मज़ाक नहीं है, बल्कि उनके हितों से विश्वासघात करने वाले लोकरंजक नौटंकीबाज़ का मज़ाक है।

हिटलर ने भी सेना में जाने के पहले कैजुअल मज़दूरी करते हुए रंगसाज़ी का काम किया था और बेर्टोल्ट ब्रेष्ट ने अपनी कई कविताओं में 'रंगसाज़ हिटलर' को एक रूपक बनाते हुए उसका ख़ूब मज़ाक उड़ाया है। चाय बेचने वाले मोदी पर, मैं सोचती हूँ, काफी अच्छी व्यंग्यात्मक कविताएँ लिखी जा सकती हैं।

और अन्त में एक किस्सा। एक मुलाक़ात के दौरान ख़ुश्चेव ने चाऊ एन-लाई से कहा कि 'हम लोगों में एक बुनियादी फर्क यह है कि मैं मेहनतकश वर्ग से आता हूँ, जबकि आप कुलीन वर्ग से।' चाऊ एन-लाई ने कहा, 'लेकिन एक बुनियादी समानता भी है। हम दोनों ने अपने-अपने वर्ग से ग़द्दारी की है।' नरेन्द्र मोदी चाय बेचता था, यह रट्टा लगाना वह बन्द कर देगा, यदि उसे पता चलेगा कि मुसोलिनी एक लुहार का बेटा था, जो बचपन में लुहारी के काम में अपने पिता की मदद करता था और हिटलर पहले घरों में रँगाई-पुताई का काम करता था। चाय बेचने की पृष्ठभूमि वाले नरेन्द्र मोदी, अरे, तुम्हारी तो पृष्ठभूमि भी तुम्हारे नायकों जैसी ही है! ये तो पोपट हो गया!

चाय वालों के कुछ किस्से और ख़ूनी चाय की तासीर

मेरे बचपन में, गोरखपुर की एक पुरानी बस्ती में एक चाय वाला चाय बेचता था। उसकी चाय में कुछ अलग ही स्वाद था। वह चाय बनाकर भी बेचता था और बुरादा चाय के पैकेट भी। एक दिन मुहल्ले के लोगों ने उसे पकड़कर ख़ूब पीटा। पता चला कि वह चाय में गधे की लीद सुखाकर मिलाता था।

कुछ वर्षों पहले सुल्तानपुर कचहरी के बाहर चाय बेचने वाले एक 'राजनीतिक प्राणी' से सम्पर्क हुआ था। उसके ठीहे पर दिन भर चाय पीकर जो लोग कुल्हड़ फेंकते थे, उन्हें वह रात में बटोर लेता था और अगले दिन फिर उन्हीं में ग्राहकों को चाय देता था।

गोरखपुर में हिन्दू-मुसलमानों की मिली-जुली आबादी वाली एक बस्ती में तीन चाय की दुकानें इत्तफाक से मुसलमानों की थी। एक हिन्दू चाय वाले ने वहाँ दुकान खोली और हफ्ते भर के सघन मुँहामुँही प्रचार से उसने 'हिन्दू चाय' और 'मुस्लिम चाय' के आधार पर ग्राहकों का ध्रुवीकरण कर दिया।

जयपुर में सामाजिक कामों के दौरान एक चाय वाले का पता चला जो छोटे-छोटे बच्चों से (मुख्यतया नेपाली) पास के बैंकों, बीमा दफ़्तर और दुकानों में चाय भिजवाता था, फिर जब महीने की पगार देने की बात आती थी तो उनपर चोरी का इलज़ाम लगाकर मार-पीटकर भगा देता था।

बहुत पहले, गोरखपुर से लखनऊ जाते समय जाड़े की एक रात में, किसी छोटे स्टेशन पर चाय की तलब लगी। खिड़की से चाय का कुल्हड़ पकड़ ही रही थी कि ट्रेन चल दी। चाय वाला चाय देना छोड़कर फट मेरे हाथ से घड़ी नोचकर भाग गया। मैं देखती ही रह गयी। तो साधो, इन सभी किस्सों का लुब्बोलुआब यह कि सभी चाय वाले बड़े ईमानदार और भलेमानस होते हों, यह ज़रूरी नहीं। और राजनीति में आकर वे चाय वालों जैसे सभी आम लोगों के शुभेच्छु बन जायें, लोकहित की राजनीति करने लगें, यह तो एकदम ज़रूरी नहीं।

ज़रूरी नहीं कि कोई चाय वाला होने के नाते जनता का भला ही सोचे! उनकी मानसिकता छोटे मालिक की भी हो सकती है। यह छोटा मालिक बड़ा बेरहम और गैर जनतांत्रिक होता है। हर छोटा व्यवसायी बड़ा होटल मालिक बनने का ख़्वाब पालता है। लाल किले तक नहीं पहुँच पाता तो मंच पर ही लाल किला बना देता है। चायवाले से इतनी हमदर्दी भी ठीक नहीं कि उससे इतिहास-भूगोल सीखना शुरू कर दिया जाये। यह कैसे मान लिया जाये कि कोई आदमी महज़ चाय बेचने के चलते देश का प्रधानमंत्री बनने योग्य है! हर चायवाला सभी चायवालों के हितों का प्रतिनिधि हो, यह भी जरूरी नहीं। एक रँगाई-पुताई करने वाले (हिटलर) ने और एक लुहार के बेटे (मुसोलिनी) ने अभी 70-75 वर्षों पहले ही अपने देश में ही नहीं, पूरी दुनिया में गज़ब की तबाही और कत्लो-गारत का कहर बरपा किया था। यह आर्यावर्त का चायवाला उतनी बड़ी औक़ात तो नहीं रखता, पर 2002 में पूरे गुजरात में इसने ख़ूनी चाय के जो हण्डे चढ़वाये थे, उनको याद किया जाये और आज के मुज़फ़्फ़रनगर को देखा जाये तो इतना साफ हो जाता है कि यह पूरे हिन्दुस्तान को ख़ून की चाय पिला देना चाहता है। ख़ूनी चाय की तासीर से राष्ट्रीय गौरव की भावना पैदा होती है और देश "गौरवशाली अतीत" की ओर तेज़ी से भागता हुआ अनहोनी रफ़्तार से तरक़्क़ी कर जाता है, ऐसा इस चायवाले का दावा है।

-कविता कृष्णपल्लवी

आज़ादी, बराबरी और इंसाफ के लिए लड़ने वाली मरीना को इंक़लाबी सलाम!

यह तस्वीर है मरीना जिनेस्टा की। शायद आप इसे नहीं जानते होंगे क्योंकि शासक वर्गों का मीडिया जनता मेहनतकशों के लिए लड़ने वाले नायकों के बारे में हमें कभी नहीं बताता। मरीना की यह तस्वीर 1936 में स्पेन के गृहयुद्ध की सबसे मशहूर तस्वीरों में से एक है। उस वक़्त वह सत्रह साल की थी और फासिस्ट जनरल फ्रांको की फौजों से स्पेनी गणतंत्र की रक्षा के लिए चल रही लड़ाई में शामिल थी। पिछली 6 जनवरी को 94 वर्ष की उम्र में पेरिस में उनका निधन हो गया।

19 जनवरी 1929 को फ्रांस के तुलूस शहर में जन्मी मरीना का परिवार 1930 के शुरू में स्पेन के बारसीलोना जाकर बस गया था जहाँ वह युनिफाइड सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो गयी। 1936 में स्पेन में मेहनतकश समर्थक लेफ्ट फ्रंट की सरकार का फासिस्ट जनरल फ्रांको द्वारा तख़्तापलट करने के बाद स्पेन के तमाम इंसाफ़पसन्द जुझारू नौजवानों की तरह मरीना भी गणतंत्र की हिफ़ज़त के लिए रिपब्लिकन मिलिशिया में शामिल हो गयी।

स्पेन का गृहयुद्ध सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयतावाद का एक अद्भुत उदाहरण था जब फासिस्टों से गणतांत्रिक स्पेन की रक्षा करने के लिए पूरी दुनिया के 50 से अधिक देशों से कम्युनिस्ट कार्यकर्ता स्पेन पहुँचकर अन्तरराष्ट्रीय ब्रिगेडों में शामिल हुए थे। हज़ारों कम्युनिस्टों ने फासिस्टों से लड़ते हुए स्पेन में अपनी कुर्बानी दी थी। इनमें पूरी दुनिया के बहुत से श्रेष्ठ कवि, लेखक और बुद्धिजीवी भी थे। उस वक़्त जब दुनिया पर फासिज़्म का ख़तरा मँडरा रहा था, जर्मनी में हिटलर और इटली में मुसोलिनी दुनिया को विश्वयुद्ध में झोंकने की तैयारी कर रहे थे, ऐसे में स्पेन में फासिस्ट फ्रांको द्वारा सत्ता हथियाये जाने का मुँहतोड़ जवाब देना ज़रूरी था। जर्मनी और इटली की फासिस्ट सत्ताएँ फ्रांको का साथ दे रही थीं लेकिन पश्चिमी पूँजीवादी देश बेशर्मी से किनारा किये रहे और उसकी मदद भी करते रहे। केवल स्तालिन के नेतृत्व में सोवियत संघ ने फ्रांकों को परास्त करने का आह्वान किया और कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल के आह्वान पर हज़ारों- हज़ार कम्युनिस्टों ने स्पेन की मेहनतकश जनता के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ते हुए बलिदान दिया।

यह तस्वीर उसी दौर की याद दिलाती है जब नौजवानों में एक महान लक्ष्य के लिए, आज़ादी, बराबरी और इंसाफ के लिए लड़ने और कुर्बानी देने का ज़ज़्बा हिलोरे मार रहा था। आज उस दौर के संघर्षों और उपलब्धियों की शानदार विरासत को धूल-राख से ढँक दिया गया है मगर आने वाला वक़्त एक बार फिर उसे पुनरुज्जीवित करेगा।

संघर्ष की उस विरासत को याद करना आज इसलिए भी ज़रूरी है क्योंकि एक बार फासीवाद हमारे दरवाज़ों पर दस्तक दे रहा है। पूँजीवाद के जिस संकट के गर्भ से हिटलर, मुसोलिनी और फ्रांको के फासीवाद का जन्म हुआ था उससे भी गहरा संकट आज पूरी दुनिया में पूँजीवाद को जकड़े हुए है। संकट से उबरने का पूँजीपतियों को बस एक ही तरीक़ा आता है – और वह मेहनतकश जनता की नस-नस निचोड़कर अपने मुनाफ़े को बढ़ाने और जनता जब प्रतिरोध करे तो उसे बर्बरता के साथ कुचल डालने का तरीक़ा। जनता को धार्मिक-जातीय-अन्धराष्ट्रवादी उन्माद भड़काकर आपस में बाँटने का तरीक़ा। इतिहास का सबक़ है कि ऐसे फ़ासिस्टों को मेहनतकश और नौजवानों की फौलादी एकता और जुझारू संघर्ष से ही धूल चटायी जा सकती है। मरीना जेनेस्टा की याद एक बार फिर हमें इस संघर्ष के लिए कमर कसने को प्रेरित करती है।

– संजय

स्पेन में गहराता आर्थिक संकट आम लोगों को आत्महत्या की ओर धकेल रहा है

बढ़ती बेरोज़गारी, ग़रीबी और कर्ज़ के बोझ ने हज़ारों को ख़ुदकुशी पर मजबूर किया

बीते नवम्बर महीने में स्पेन के बुर्ज़ासोते शहर में एक 54 साल के पिता ने अपनी बेटी को चूमा और छत से छलांग लगा दी, 53 साल के अमाइया ईगन ने बिलबाओ में अपने घर की चौथी मंज़िल से छलांग लगा दी। इन दोनों को बैंक की तरफ से घर ज़ब्त किये जाने के कारण घर खाली करने का नोटिस मिला था। इसी तरह से एक युवा ने ग्रेन क्नारिया में एक पुल से छलांग लगा दी, उसको नौकरी छोड़ने और घर खाली करने का नोटिस मिला था। दूसरी तरफ लाखों की संख्या में लोग सड़कों पर उतर रहे हैं, उनके हाथों में जो बैनर हैं उन पर लिखा है: ***"ये आत्महत्याएँ नहीं, घिनौने कत्ल हैं", "उन्हें पैसा मिल रहा है हमें मौत", और "हमें इस आर्थिक आतंकवाद को खत्म करना ही होगा।"*** ग़ौरतलब है कि ***स्पेन में अब तक आत्महत्या की ऐसी 3158 घटनाएँ सामने आ चुकी हैं।*** विश्वस्तर पर चल रहे वित्तीय संकट के कारण स्पेन की हालत नाजुक हो चुकी है। बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी फैली हुई है, कर्ज़ में दिन-ब-दिन बढ़ोत्तरी हो रही है, लोगों को बेघर किया जा रहा है और लोग सड़कों पर सोने के लिए मजबूर हैं तथा दो वक़्त की रोटी के भी लाले पड़ गये हैं। इन दिक़्क़तों से परेशान लोग आत्महत्या कर रहे हैं।

स्पेन का मौजूदा संकट पूँजीवाद का ढांचागत संकट ही है जो उत्पादन के सामाजिक चरित्र और उत्पादन के साधनों के निजी मालिकाने के अन्तरविरोध से पैदा होता है तथा अलग-अलग रूपों में सामने आता है। पूँजीवाद के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था तेज़ी और मन्दी के दौरों से गुज़रते हुए संकटों में बार-बार फँसती रहती है। 2008 तक स्पेन अच्छी विकास दर से आगे बढा, लेकिन जैसा कि पूँजीवाद में होना ही था, आर्थिक तेज़ी के बाद संकट ने दस्तक दी। ज़्यादा उत्पादन के कारण बाज़ार चीजों से भर गये लेकिन बिक्री सीमित थी, नतीजतन बड़े पैमाने पर अर्थव्यवस्था को सहारा देने के लिए निर्माणक्षेत्र में पूँजी लगाने की योजना बनयी गयी, लोगों को घरों के लिए कम दरों पर लम्बी मियाद (40 वर्ष) के लिए कर्ज़ दिया जाने लगा ताकि लोग ख़रीदारी कर सकें और अर्थव्यवस्था में गति आये। इसके पीछे यह सोच थी कि घरों की कीमत लगातार बढ़ती रहती है, अगर लोग कर्ज़ वापस न कर पाये तो घर ज़ब्त कर लिए जायेंगे। उनकी तरफ से वापस की गयी दो-चार किश्तें और घरों की बढ़ी हुई कीमत बैंकों का मुनाफ़ा बन जायेगा। लेकिन घर ज़्यादा होने के कारण घरों की कीमतें बड़े पैमाने पर गिर गयीं और अर्थव्यवस्था को कोई लाभ न मिल सका और लोग कंगाल हो गये और इससे बैंकों के डूबने की नौबत आ गयी। बैंकों को बचाने के लिए सरकार ने इनको भारी बेल-आऊट पैकेज दिये, इसके लिए सरकार को विदेशों से भारी कर्ज़ लेना पड़ा और सरकार भी कर्ज़दार हो गई। इस तरह स्पेन का संकट और गहरा हो गया। स्पेन पर इसके घरेलू उत्पादन का करीब 85 फीसदी कर्ज़ है। इसकी विकास दर गिरकर 1.4 फीसदी पर आ गयी है। यहाँ बेरोज़गारी लगातार बढ़ रही है, ताज़ा आंकड़ों के मुताबिक यहाँ बेरोज़गारी की दर 29 फीसदी पर पहुँच गयी है। मतलब कि काम करने योग्य प्रत्येक चार आदमियों में से एक बेरोज़गार है। युवकों में बेरोज़गारी और भी भयंकर है, यह 50 फीसदी को पार कर गयी है। मतलब कि स्पेन के हर दो युवाओं में से एक युवा बेरोज़गार है। स्पेन की सरकार ने अपना बजट घाटा कम करने के लिए अपने खर्चों में कटौती शुरू कर दी है, मतलब कि आम जनता को जल, स्वास्थ्य, शिक्षा और पेंशन आदि सुविधाओं से अपने हाथ खींच लिए हैं। इससे जनता का जीवन कठिन तो हुआ है साथ ही उनमें और ज़्यादा आक्रोश और बेचैनी फैली है।

अब बैंक की तरफ से किश्तों का भुगतान न करने वालों के घर ज़ब्त किये जा रहे हैं। स्पेन में रोजाना 512 लोगों को बेघर किया जा रहा है जो कि पिछले वर्ष से 30 फीसदी ज़्यादा है। अब तक स्पेन में चार लाख से ज़्यादा लोगों को बेघर किया जा चुका है, सिर्फ वर्ष 2012 के दौरान 1,01,034 लोगों को बेघर किया गया है। स्पेन में बढ़ रही बेरोज़गारी और घर छीने जाने से परेशान लोग आत्महत्या कर रहे हैं। आत्महत्या के कारण होने वाली मौतों की गिनती हादसों में होने वाली मौतों से 120 प्रतिशत ज़्यादा है। दूसरी तरफ स्पेन के बैंक, पूँजीपति और राजनेता अमीर होते जा रहे हैं। एक तरफ लाखों लोग बेघर हो गए हैं और फुटपाथ पर सोने को मजबूर हैं, दूसरी तरफ 20 लाख से ज़्यादा मकान खाली पड़े हैं जिनके लिए कोई ख़रीदार नहीं मिल रहा। इस तरह हम देख सकते हैं कि कैसे एक तरफ धन के अम्बार लगे हुए हैं दूसरी तरफ लोगों के लिए दो वक्त की रोटी भी मुश्किल बनी हुई है।

यह मानवीय इतिहास की एक त्रासद घटना ही है कि यहाँ लोग इसलिए कंगाल हो रहे हैं क्योंकि इस्तेमाल के साधन ज़रूरत से ज़्यादा पैदा हो गये हैं। पूँजीवादी ढाँचे में ज़रूरत की चीज़ों की बहुतायत से पैदा हुए संकट के कारण अगर लोग आत्महत्या कर रहे हैं तो इनको पूँजीवाद की तरफ से किये जा रहे ठण्डे कत्ल कहा जाना ज्यादा ठीक होगा। हर वर्ष भूख, सर्दी, सर पर छत न होने के कारण और साधारण सी बीमारियों के कारण लाखों लोगों की इसलिए मृत्यु हो जाती है कि उनके पास भोजन, वस्त्र, घर और दवाओं के लिए पैसे नहीं और दूसरी तरफ इन्हीं चीजों के अम्बार लगे हुए हैं और बेकार पड़ी सड़ रही हैं। इस तरह यह भी पूँजीवाद द्वारा की जा रही वहशी हत्याएँ ही हैं। दिन-ब-दिन यह ढाँचा और ज़्यादा मानवद्वेषी और परजीवी होता जा रहा है और उतनी ही इसको तबाह करने की सम्भावनाएं और ज़रूरत बढती जा रही है। स्पेन की राजनैतिक पार्टियाँ इन आत्महत्याओं पर पूरी कमीनगी से अपनी राजनीति की रोटियाँ सेक रही हैं। विरोधी पक्ष सोशलिस्ट पार्टी (सिर्फ नाम की) के लिए यह मौजूदा सरकार को कोसने और लोगों को लुभावने भाषण सुनाकर आने बाले चुनाव में वोट बटोरने का मौका बन चुका है। मौजूदा सरकार जनता के आक्रोश के चलते कुछ क़ानून बनाकर इन आत्महत्याओं को रोकना चाह रही है। लेकिन चूँकि पूँजीवादी ढाँचे में सरकार पूँजीपति वर्ग की ही सेवक होती है, इसलिए इस "क़ानून" में बैंकरों पर कोई कारवाई नहीं की गयी।

स्पेन में लाखों की संख्या में लोग मौजूदा ढाँचे, पूँजीपतियों और राजनीतिज्ञों के खिलाफ सड़कों पर उतर रहे हैं। लेकिन लोगों के इन विरोध प्रदर्शनों में एक सही क्रान्तिकारी विचारधारा और दिशा की कमी है, जिस कारण ये संघर्ष ज़्यादा कारगर नहीं साबित हो रहे। इन संघर्षों को संगठित ढंग से चलाने, मार्क्सवाद को मार्गदर्शक बनाने और समाजवाद के विचारों की तरफ झुकाव वाले लोगों की गिनती अभी कम है। स्पेन में पूँजी और श्रम के विरोध की वजह से उठे इस चक्रवात का क्या परिणाम होगा, यह तो आने वाला भविष्य ही बतायेगा।

– गुरप्रीत

बेनक़ाब हुई केजरीवाल सरकार, श्रम मन्त्री मज़दूरों की महासभा से भागे!
ठेका प्रथा उन्मूलन के वायदे से मुकरी केजरीवाल सरकार!

दिल्ली मज़दूर यूनियन व अन्य यूनियनों के नेतृत्व में चलाये जा रहे 'दिल्ली के मज़दूरों का माँगपत्रक आन्दोलन' के तहत विशाल संख्या में मज़दूरों की दिल्ली सचिवालय पर महासभा

(पेज 1 से आगे)

की धमकी दी और कहा कि अगर वे काम पर नहीं लौटे तो फिर उन्हें कभी स्थायी नहीं किया जायेगा। ठेका मज़दूरों से इस धोखाधड़ी के कारण ठेका मज़दूरों में 'आप' की सरकार के ख़िलाफ़ ज़बर्दस्त रोष था। दिल्ली परिवहन निगम के ठेके पर काम करने वाले हज़ारों चालकों और परिचालकों के प्रदर्शन में गये केजरीवाल को ठेका कर्मचारियों ने दौड़ा लिया और केजरीवाल को पुलिस सुरक्षा में भागना पड़ा। इन सभी घटनाओं के बाद इस बात को लेकर मज़दूरों में सन्देह और अविश्वास पैदा हो चुका था कि 'आप' सरकार मज़दूरों से किये गये अपने वायदों को पूरा करेगी या नहीं। दिल्ली मज़दूर यूनियन के अजय स्वामी ने बताया कि इस माँगपत्रक आन्दोलन का यही मक़सद है कि केजरीवाल सरकार को इस वायदे से मुकरने न दे।

एक माह के सघन अभियान के बाद, बड़ी संख्या में दिल्ली के विभिन्न पेशों के मज़दूर दिल्ली सचिवालय पर एकत्र हुए। 6 फरवरी को सुबह 11 बजे से मज़दूरों का सचिवालय पर पहुँचने का सिलसिला शुरू हो गया। करीब साढ़े बारह तक बारह सौ से तेरह सौ मज़दूर दिल्ली सचिवालय के निकट किसान घाट के गेट पर एकत्र हो चुके थे। इसके बाद मज़दूर दो पंक्तियों में एक जुलूस की शक्ल में दिल्ली सचिवालय की ओर बढ़ने लगे। कुछ ही आगे केजरीवाल सरकार ने मज़दूरों को रोकने के लिए बैरीकेड लगा रखे थे। ग़ौरतलब है कि अपने क़ानून तोड़ने वाले मन्त्री को बचाने के लिए केजरीवाल खुद कृषि भवन पर धरने पर बैठ गये थे और तब वह बैरीकेड लगाने के लिए पुलिस की आलोचना कर रहे थे। लेकिन जब मज़दूर अपने जायज़ हक़ों को लेने और वायदे पूरे करने की माँग को लेकर आये तो केजरीवाल ने खुद पुलिस को आगे कर दिया! लेकिन ये बैरीकेड और सैकड़ों की संख्या में पुलिस बल की मौजूदगी मज़दूरों को रोक नहीं सकी। इस पूरे दौरान मज़दूरों की संख्या भी लगातार बढ़ रही थी। करीब 1 बजे के आस-पास मज़दूरों ने बैरीकेड को तोड़ दिया और पुलिस देखती रह गयी। मज़दूर दिल्ली सचिवालय की ओर आगे बढ़ने लगे। बीस मिनट में मज़दूर दिल्ली सचिवालय के गेट के करीब पहुँच गये। यहाँ पर मज़दूरों ने मज़दूर महासभा (दिल्ली के मज़दूरों की जनरल बॉडी मीटिंग) की शुरुआत की। जनसभा का संचालन उत्तर-पश्चिमी दिल्ली मज़दूर यूनियन के राकेश ने किया। इसके बाद तमाम यूनियनों के प्रतिनिधियों ने महासभा को सम्बोधित किया। दिल्ली मज़दूर यूनियन के अजय स्वामी ने स्पष्ट किया कि जब तक स्वयं मुख्यमन्त्री केजरीवाल या फिर श्रम मन्त्री गिरीश सोनी आकर मज़दूरों की महासभा को सम्बोधित नहीं करते और मज़दूर प्रतिनिधियों को जवाब नहीं देते, तब तक मज़दूर यहाँ से नहीं उठेंगे और ज़रूरत पड़ी तो दिल्ली सचिवालय के गेट को जाम करेंगे।

कैसे भागे श्रम मन्त्री गिरीश सोनी मज़दूरों के सवालों से बचने के लिए!

मज़दूर महासभा शुरू होने के कुछ समय बाद ही विशाल संख्या में मज़दूरों के जुटान को देखकर श्रम मन्त्री गिरीश सोनी प्रदर्शन पर आने को मजबूर हुए। अपने निजी सचिव अवधेश के साथ गिरीश सोनी मज़दूर महासभा में आये और उन्होंने पूछा कि मज़दूर क्या चाहते हैं। दिल्ली मज़दूर यूनियन के अभिनव ने कहा कि हमारी सबसे प्रमुख माँग है कि दिल्ली राज्य के स्तर पर केजरीवाल सरकार एक ठेका मज़दूरी उन्मूलन विधेयक पास करे। हालाँकि, केन्द्रीय एक्ट (ठेका मज़दूरी विनियमन व उन्मूलन क़ानून, 1970) में इस बात का प्रावधान है कि किसी भी नियमित प्रकृति के काम पर ठेका मज़दूरी का उन्मूलन हो सके, लेकिन ऐसा करने के लिए सरकार बाध्य नहीं है। साथ ही, सेक्शन 31 में सरकारों को इस बात की इजाज़त दी गयी है कि किन्हीं "विशेष" या "अपवाद स्वरूप परिस्थिति" में सरकार इस क़ानून को लागू करने से इंकार भी कर सकती है; यानी कि सरकार चाहे तो नियमित प्रकृति के कामों पर भी ठेका मज़दूरी लगा सकती है। नतीजतन, यह केन्द्रीय क़ानून बेहद कमज़ोर है। इसलिए दिल्ली राज्य के पैमाने पर एक अलग ठेका मज़दूरी उन्मूलन विधेयक बनाया जाना चाहिए। इस पर श्रम मन्त्री ने कहा कि यह नीतिगत मसला है और इस पर सरकार तुरन्त फैसला नहीं ले सकती है; साथ ही श्रम मन्त्री सोनी ने कहा कि ठेका प्रथा तो बहुत पुरानी समस्या है, इसे पहले की सरकारों ने अपने भ्रष्टाचार से पैदा किया है। इसके लिए केजरीवाल सरकार क्या कर सकती है? इस पर स्त्री मज़दूर संगठन की शिवानी ने कहा कि भ्रष्टाचार भी बहुत पुरानी समस्या थी और अगर केन्द्रीय भ्रष्टाचार-विरोधी क़ानून के कमज़ोर होने के कारण केजरीवाल सरकार आनन-फानन में जनलोकपाल विधेयक पास कर सकती है, तो फिर ठेका मज़दूरी उन्मूलन के लिए अलग विधेयक क्यों नहीं पास कर सकती? लाजवाब होने पर श्रम मन्त्री गोलमाल करने लगे और उन्होंने कहा कि हम इसके लिए एक कमेटी बना देते हैं जो अपनी रिपोर्ट एक माह में दे और उसके अनुसार अगर क़ानून की ज़रूरत होगी तो क़ानून बनाने पर विचार होगा। इस पर मज़दूर प्रतिनिधियों ने उन्हें बताया कि किसी रिपोर्ट की ज़रूरत नहीं है क्योंकि दिल्ली के असंगठित क्षेत्र के तमाम ठेका मज़दूरों के बारे में पर्याप्त सूचनाएँ सरकार के पास पहले से ही हैं। अब नये सिरे से किसी रिपोर्ट की ज़रूरत क्यों? यह सिर्फ़ इसलिए किया जा रहा है ताकि रिपोर्ट-रिपोर्ट और कमेटी-कमेटी खेलने में केजरीवाल सरकार के 20-25 दिन और कट जायें, लोकसभा चुनावों की आचार-संहिता लागू हो जाये, और उसके बाद केजरीवाल सरकार मज़दूरों से किये गये वायदे, विशेष तौर पर ठेका मज़दूरी उन्मूलन के वायदे से बच जाये। मज़दूर साथियों को पता होगा कि एक बार चुनाव की आचार संहिता लागू हो गयी तो केजरीवाल सरकार कोई क़ानून या नयी नीति नहीं लागू कर सकती। ऐसे में, केजरीवाल किसी तरह से 20-25 दिन काटना चाहते हैं ताकि वह मज़दूरों से किये वायदों को पूरा करने से बच सकें।

दिल्ली के श्रम मंत्री गिरीश सोनी अपने सचिव के साथ मज़दूरों से मिलने पहुँचे लेकिन उनके सवालों से घबराकर भाग खड़े हुए।

इस पर श्रम मन्त्री गिरीश सोनी थोड़ी देर तक चुप हो गये और अपने सचिव से विचार-विमर्श करने लगे। इसके बाद उन्होंने कहा कि केन्द्रीय क़ानून में कोई कमी नहीं है और केजरीवाल सरकार को ठेका उन्मूलन क़ानून बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके बाद उनसे पूछा गया कि केन्द्रीय क़ानून में क्या लिखा है? इस पर वह चुप हो गये। उन्होंने केन्द्रीय क़ानून देखा तक नहीं था। इसके बाद उन्हें केन्द्रीय क़ानून पढ़कर सुनाया गया और दिखाया गया कि केन्द्रीय क़ानून क्यों कमज़ोर है। इसके बाद, उन्होंने कहा कि वह सारे मज़दूरों के सामने नहीं बोल सकते और 5 लोगों का प्रतिनिधि मण्डल आकर उनसे मुलाकात करे। इस पर मज़दूर प्रतिनिधियों ने ज़ोर देकर कहा कि पहले वह कोई मौखिक आश्वास मज़दूरों को देकर जायें, इसके बाद कोई प्रतिनिधि मण्डल उनसे इसी आश्वासन को लिखित में लेने के लिए मिल सकता है। इसके बाद श्रम मन्त्री गिरीश सोनी अपने सचिव के साथ भाग खड़े हुए।

केजरीवाल सरकार की मज़दूरों से धोखाधड़ी

केजरीवाल सरकार के एक मन्त्री ने ठेका उन्मूलन विधेयक पास करने से साफ़ इंकार कर दिया। श्रम मन्त्री गिरीश सोनी के भागने के बाद मज़दूरों की महासभा जारी रही और शाम 6 बजे तक चलती रही। इस महासभा को स्त्री मज़दूर संगठन की शिवानी और कविता, करावलनगर मज़दूर यूनियन की बेबी कुमारी, वज़ीरपुर कारखाना मज़दूर यूनियन के सनी, उद्योगनगर मज़दूर यूनियन के नवीन, उत्तर-पश्चिमी दिल्ली मज़दूर यूनियन के रामाधार और दिल्ली मेट्रो रेल ठेका मज़दूर यूनियन के अजय स्वामी ने सम्बोधित किया। यूनियनों के प्रतिनिधियों ने बताया कि किस प्रकार खुलेआम दिल्ली के सभी उद्योगों, दुकानों और होटलों आदि में नियमित प्रकृति के कार्यों को ठेके पर कराया जाता है, किस प्रकार जहाँ उचित तौर पर भी ठेका मज़दूर रखे जाते हैं (यानी कि अनियमित कार्यों पर) वहाँ भी न तो मज़दूरों को न्यूनतम मज़दूरी दी जाती है, न आठ घण्टे के कार्यदिवस का पालन होता है, न स्वैच्छिक ओवरटाइम होता है

(पेज 8 पर जारी)

बेनक़ाब हुई केजरीवाल सरकार, श्रम मन्त्री मज़दूरों की महासभा से भागे!

(पेज 8 से आगे)

और न ही ओवरटाइम के लिए डबल रेट से भुगतान होता है। वज़ीरपुर, मंगोलपुरी, उद्योगनगर, बादली, बवाना, नरेला से लेकर करावलनगर, मायापुरी, नारायणा, झिलमिल के औद्योगिक क्षेत्रों में आये दिन दुर्घटनाएँ होती हैं क्योंकि तमाम ख़तरनाक किस्म के कामों में मज़दूरों को क़ानूनी तौर पर आवश्यक सुरक्षा उपकरण नहीं मुहैया कराये जाते हैं। कारखानों में मशीनों से हाथ कट जाना, आग लग जाना, बॉयलर में विस्फोट हो जाना आम बात है और दुर्घटना में पीड़ित होने या मरने वाले लोगों की संख्या को कम दिखलाने, उनके मुआवज़े को मारने और उन्हें ग़ायब करवाने के लिए पूरा प्रशासन, पुलिस और श्रम विभाग मालिकों और ठेकेदारों से मिलकर काम करते हैं। मीडिया भी इस तरह की घटनाओं को कभी सुर्ख़ी नहीं बनाता। अब केजरीवाल सरकार जो कि मज़दूरों से यह वायदा करके आयी थी कि ठेका मज़दूरी का उन्मूलन किया जायेगा, वह भी अपने वायदों से खुलेआम मुकर रही है। पिछले डेढ़ महीनों में ठेका मज़दूरी उन्मूलन, न्यूनतम मज़दूरी समेत तमाम श्रम क़ानूनों को लागू करवाने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की गयी है। जबकि व्यापारियों, वैश्य महासभा और उद्योगपतियों की तमाम बैठकों में सजदे करने के लिए अरविन्द केजरीवाल पहुँच जाता है। और जनता के सामने कुछ नौटंकीबाज़ियाँ कर अपने आपको 'आम आदमी' साबित करने की कोशिश करता है।

सचिवालय में श्रम मन्त्री गिरीश सोनी और मज़दूर प्रतिनिधि मण्डल के बीच वार्ता: जब श्रम मन्त्री का असली चरित्र खुलकर सामने आ गया!

शाम करीब साढ़े चार बजे मज़दूरों के एक 5-सदस्यीय प्रतिनिधि मण्डल को श्रम मन्त्री गिरीश सोनी ने मिलने के लिए बुलाया। मज़दूरों का प्रतिनिधि मण्डल जब अन्दर गया तो उनके लोगों को यह घूस देने की कोशिश की गयी कि वे सरकारी ठेका मज़दूर समितियों के अध्यक्ष बन जायें। ऐसी दो समितियों का पत्र बनाकर मज़दूर प्रतिनिधि मण्डल को सौंपा गया जिसमें निर्माण मज़दूरों व अन्य असंगठित मज़दूरों के लिए श्रम क़ानूनों को लागू करवाने के लिए एक दिखावटी कमेटी बनाने की नौटंकी की गयी थी। बाद में पता चला कि जिन सदस्यों का नाम इस कमेटी में रखा गया था, स्वयं उन्हें ही सूचित नहीं किया गया था! साफ़ है केजरीवाल सरकार ने मज़दूरों के प्रदर्शन से डरकर तुरन्त ही दो पत्र बनाकर मज़दूर प्रतिनिधि मण्डल को सौंप दिये थे, जिसमें दो नयी कमेटियों का ज़िक्र किया गया था। लेकिन मज़दूर प्रतिनिधि मण्डल की माँग थी कि श्रम मन्त्री लिखित में बतायें कि उनकी सरकार विधानसभा में ठेका उन्मूलन विधेयक पास करेगी या नहीं। इस पर श्रम मन्त्री ने कहा कि उन्हें सोचने के लिए एक घण्टा दिया जाय। एक घण्टे तक अपने सचिवों से विचार-विमर्श के बाद श्रम मन्त्री ने मज़दूर प्रतिनिधि मण्डल को फिर से बुलाया और कहा कि ऐसे क़ानून को पास करने के लिए विधानसभा में तीन-चौथाई बहुमत की आवश्यकता होगी जो उन्हें नहीं मिलेगा। इस पर मज़दूर प्रतिनिधियों ने कहा कि आम आदमी पार्टी सरकार इस बात की परवाह क्यों कर रही है? उसका काम है अपना वायदा पूरा करते हुए ठेका उन्मूलन विधेयक पेश करना। जो भी इसके ख़िलाफ़ वोट करेगा, वह मज़दूरों के निगाह में नंगा हो जायेगा और मज़दूर उन्हें ज़मीनी धरातल पर मज़ा चखायेंगे। आप की सरकार बस विधेयक पेश करे। इस पर श्रम मन्त्री अपने असली रूप में आ गये! उन्होंने कहा कि ऐसे ठेका उन्मूलन क़ानून से कारखाना मालिकों और ठेकेदारों को नुकसान होगा इसलिए केजरीवाल सरकार ठेका उन्मूलन विधेयक पेश नहीं करेगी। उसी समय यह भी पता चला कि श्रम मन्त्री गिरीश सोनी स्वयं एक कारखाना मालिक है, जो कि पश्चिमी दिल्ली में मैस्कट लेदर वर्क्स नामक एक चमड़े का कारखाना चलाता है। ज़ाहिर है, मज़दूरों के हक़ों की रखवाली का काम कोई कारखाना मालिक कर ही नहीं सकता। इससे भी केजरीवाल सरकार के मज़दूर-विरोधी चरित्र का पता चलता है कि एक कारखाना मालिक को श्रम मन्त्री बना दिया गया है! इसके बाद, श्रम मन्त्री के कार्यालय को छोड़कर मज़दूर प्रतिनिधि मण्डल बाहर आ गया। स्पष्ट हो गया कि केजरीवाल सरकार ने दिल्ली के मज़दूरों से धोखाधड़ी की है और इसका असली मकसद पूँजीपतियों की और ठेकेदारों की सेवा करना है।

क्या कारण है कि पूरी दिल्ली के सभी औद्योगिक क्षेत्रों में मालिकों और ठेकेदारों के संघ आम आदमी पार्टी और अरविन्द केजरीवाल को खुला समर्थन दे रहे हैं? क्या मज़दूरों का शोषण करने वाली ताक़तें, श्रम क़ानूनों का उल्लंघन करने वाले लुटेरे अचानक सदाचारी और सन्त पुरुष हो गये हैं? जी नहीं साथियो! वास्तव में, अरविन्द केजरीवाल अन्दर ही अन्दर इन्हीं पूँजीपतियों और ठेकेदारों के हितों में काम कर रहा है। केजरीवाल जिस भ्रष्टाचार को दूर करने की बात कर रहा है उससे मालिकों और ठेकेदारों को ही फायदा होगा! वह यह चाहता है कि ठेकेदारों-मालिकों को अपने मुनाफ़े का जो हिस्सा घूस-रिश्वत के तौर पर नौकरशाहों, इंस्पेक्टरों, श्रम विभाग अधिकारियों को देना पड़ता है, वह न देना पड़े! इससे मालिकों के वर्ग का ही लाभ होगा। लेकिन जिस भ्रष्टाचार से मज़दूर पीड़ित है, उसके बारे में केजरीवाल और उसकी आम आदमी पार्टी की सरकार चुप है। और श्रम मन्त्री गिरीश सोनी ने साफ़ तौर पर बोल भी दिया कि केजरीवाल सरकार को ठेकेदारों और मालिकों के हितों की सेवा करनी है, मज़दूरों के लिए ठेका उन्मूलन क़ानून पास करने से उसने सीधे इंकार कर दिया। यानी ठेका उन्मूलन के वायदे से केजरीवाल सरकार खुलेआम मुकर गयी!

अपने अपराधी मंत्री को बचाने के लिए धरने पर बैठने वाले केजरीवाल ने पुलिस को ख़ूब कोसा लेकिन अपनी जायज़ माँगें लेकर उससे मिलने गये मज़दूरों को रोकने के लिए सैकड़ों की तादाद में पुलिस तैनात कर दी

आगे का रास्ता! मज़दूरों का शपथ-ग्रहण!

वार्ता से लौटने के बाद मज़दूरों के प्रतिनिधि मण्डल ने केजरीवाल सरकार की सच्चाई को सभी मज़दूरों के सामने बेपर्द किया और कहा कि अब केजरीवाल सरकार और आम आदमी पार्टी का पूरा चरित्र खुलकर मज़दूरों के सामने आ गया है। इसके बाद यह प्रस्ताव रखा गया कि मज़दूर यूनियनें आगे के संघर्ष के लिए तैयारी करें और होली तक का समय केजरीवाल सरकार को दिया जाये कि वह मज़दूरों से किये गये वायदों से मुकरने की ग़लती न करे अन्यथा जिस ग़रीब आबादी ने कांग्रेस और भाजपा से मोहभंग के कारण आम आदमी पार्टी को भी मदद दी थी, वही ग़रीब आबादी आम आदमी पार्टी को धूल में भी मिला सकती है। इसके बाद यह तय किया गया कि होली के बाद इससे भी बड़ी संख्या में मज़दूर फिर से दिल्ली सचिवालय को घेरेंगे और दिल्ली के मज़दूरों की एक मज़दूर महापंचायत का आयोजन किया जायेगा। उस मज़दूर महापंचायत को फैसले का दिन बनाया जायेगा और सचिवालय के दरवाज़ों को जाम किया जायेगा। जब तक केजरीवाल सरकार मज़दूरों से किये गये वायदों को पूरा करने के लिए लिखित आश्वासन नहीं देगी तब तक मज़दूर सचिवालय के गेट को जाम करके रखेंगे।

मज़दूरों ने इसके बाद सामूहिक शपथ ली कि आने वाले समय में दिल्ली के सभी मज़दूर आम आदमी पार्टी का हर स्तर पर विरोध करेंगे, उसे किसी भी रूप में सहयोग या समर्थन नहीं देंगे; आने वाले चुनावों में कांग्रेस और भाजपा समेत सभी चुनावी दलों और विशेष तौर पर आम आदमी पार्टी का दिल्ली के

(पेज 9 पर जारी)

ठेका प्रथा उन्मूलन के वायदे से मुकरी केजरीवाल सरकार!

दिल्ली के मज़दूरों ने आने वाले लोकसभा चुनावों में सभी चुनावी पार्टियों और ख़ासकर आम आदमी पार्टी के भण्डाफोड़ का फैसला किया

सभी मज़दूर इलाकों और औद्योगिक इलाकों में भण्डाफोड़ किया जायेगा; मज़दूर महासभा में आये सभी मज़दूर 'दिल्ली मज़दूर यूनियन' के सदस्य बनेंगे और अन्य मज़दूरों को भी सदस्य बनायेंगे; हर मज़दूर आज से अपने आपको 'माँगपत्रक आन्दोलन' का वालण्टियर मानेगा और माँगपत्रक आन्दोलन की हर गतिविधि में शामिल होगा; होली तक यदि केजरीवाल लिखित में ठेका मज़दूरी उन्मूलन विधेयक पेश करने और सभी श्रम क़ानूनों को तत्काल सख़्ती से लागू करवाने का निर्णय नहीं लेता, तो होली के बाद हज़ारों मज़दूरों की एक मज़दूर महापंचायत दिल्ली सचिवालय पर लगायी जायेगी और जब तक केजरीवाल अपने वायदों को समयबद्ध रूप से पूरा करने का लिखित आश्वासन नहीं देता, तब तक मज़दूर वहाँ से हटेंगे नहीं। इस शपथ-ग्रहण के बाद सभा का समापन किया गया। ग़ौरतलब बात यह थी कि इस पूरे 6 घण्टे सभी बड़े समाचार चैनलों की गाड़ियाँ मज़दूरों के प्रदर्शन से 10 कदम की दूरी पर खड़ी रहीं लेकिन मज़दूरों के इस प्रदर्शन को कवर करने के लिए कोई भी न्यूज़ चैनल नहीं आया। अगर केजरीवाल अपने 10 चेलों के साथ कहीं बैठ जाता है तो सारे न्यूज़ चैनल 24 घण्टे उसकी कवरेज करने के लिए दर्जनों पत्रकारों को लगा देते हैं। लेकिन न्यूज़ चैनलों को 6 फरवरी को अपने सामने एकत्र हुए हज़ारों ठेका मज़दूर नहीं दिखायी दे रहे थे। इसका कारण यह है कि इन न्यूज़ चैनलों में तकनीशियन से लेकर पत्रकार और मज़दूर ठेके पर ही काम करते हैं और इन सभी न्यूज़ चैनलों के मालिक अम्बानी, बिड़ला, टाटा जैसे बड़े-बड़े पूँजीपति घराने हैं। तो समझा जा सकता है कि राशि-फल, भूतों की कहानियाँ, हीरो-हीरोइनों के किस्से और नेताओं की नौटंकियाँ दिखाने वाले न्यूज़ चैनलों को असंगठित मज़दूरों का इतना महत्वपूर्ण प्रदर्शन क्यों दिखायी नहीं दे रहा है। इससे भी पता चलता है कि मज़दूरों को अपना समानान्तर क्रान्तिकारी मीडिया खड़ा करना पड़ेगा। इसके बिना, हमारी बात पूरे देश तक नहीं पहुँच सकती और मज़दूर वर्ग की राजनीति देश भर अपने वर्चस्व को स्थापित नहीं कर सकती।

बहरहाल, दिल्ली के मज़दूरों के माँगपत्रक आन्दोलन की एक ज़ोरदार शुरुआत हुई है, जो कि 2011 में चले भारत के मज़दूरों के माँगपत्रक आन्दोलन का ही एक अंग है। इस आन्दोलन की शुरुआत में पहली चेतावनी मज़दूर महासभा का आयोजन किया गया। आगे का रास्ता यह है कि पहले तो केजरीवाल सरकार को मजबूर किया जाय कि वह मज़दूरों से किये गये अपने वायदों को पूरा करे या फिर कांग्रेस, भाजपा आदि की तरह ही बेनक़ाब हो जाये। इसके अलावा, आम आदमी पार्टी के सामने मज़दूरों को कोई विकल्प नहीं छोड़ना चाहिए। साथ ही, मज़दूरों को आने वाले समय में सरकार बदलने पर भी, यानी कि कांग्रेस या भाजपा की सरकार आने पर भी इन्हीं माँगों के साथ अपने संघर्ष को और सघनता से आगे ले जाना चाहिए। होली के बाद की मज़दूर महापंचायत की तैयारी दिल्ली मज़दूर यूनियन ने अभी से शुरू कर दी है। 'मज़दूर बिगुल' के ज़रिये दिल्ली के जितने मज़दूरों तक हमारी बात पहुँच रही है, वे हमसे सम्पर्क करें और इस आन्दोलन से जुड़ें!

सम्पर्क करें:
011-64623928 (मुख्य कार्यालय), 9540436262, 9711736435, 9289498250 (करावलनगर), 8750045975 (नांगलोई), 9873358124 (वज़ीरपुर), 9971158783 (बादली, शाहबाद डेरी, नरेला)

बिन हवा न पत्ता हिलता है!
बिन लड़े न कुछ भी मिलता है!
अभी तो ली अँगड़ाई है!
आगे और लड़ाई है!

जनतंत्र नहीं धनतंत्र है यह

''दुनिया के सबसे बड़े जनतन्त्र'' की सुरक्षा का भारी बोझ जनता पर पड़ता है। इसका छोटा सा उदाहरण मन्त्रियों की सुरक्षा के बेहिसाब खर्च में देखा जा सकता हैं जो अनुमानत: 130 करोड़ सालाना बैठता है। इसमें जेड प्लस श्रेणी की सुरक्षा में 36, जेड श्रेणी की सुरक्षा में 22, वाई श्रेणी की सुरक्षा में 11 और एक्स श्रेणी की सुरक्षा में दो सुरक्षाकर्मी लगाये जाते हैं। सुरक्षा के इस भारी तामझाम के चलते गाड़ियों और पेट्रोल का खर्च काफी बढ़ जाता हैं। केन्द्र और राज्यों के मन्त्री प्राय: 50-50 कारों तक के काफिले के साथ सफर करते हुए देखे जा सकते हैं। जयललिता जैसी सरीखे नेता तो सौ कारों के काफिले के साथ चलती हैं। आज सड़कों पर दौड़ने वाली कारों में 33 प्रतिशत सरकारी सम्पति हैं जो आम लोगों की गाढ़ी कमाई से धुआँ उड़ाती हैं। पिछले साल सभी राजनीतिक दलों के दो सौ से ज्यादा सांसदों ने बाकायदा हस्ताक्षर अभियान चलाकर लालबत्ती वाली गाड़ी की माँग की। साफ है कि कारों का ये काफिला व सुरक्षा-कवच जनता में भय पैदा करने के साथ ही साथ उनको राजाओ-महाराजाओं के जीवन का अहसास देता है।

एक गैर-सरकारी रिपोर्ट के मुताबिक ''अतिविशिष्ट'' तीस फीसदी लोग ऐसे हैं जिन्हें इस स्तर की सुरक्षा की कोई ज़रूरत नहीं। लगभग पचास फीसदी ''अतिविशष्ट'' लोग ऐसे हैं जिन्हें हल्की सुरक्षा पर्याप्त होगी। अभी हाल में जिस चर्चित हेलिकॉप्टर घोटाले की बात हो रही वह हेलिकॉप्टर भी अतिविशिष्ट लोगों के लिए मंगाये जा रहे थे जिनकी कीमत 3600 करोड़ थी। अगर जनता और ''जनसेवकों'' की सुरक्षा की बात करें तो जहां 761 आम नागरिकों पर एक पुलिसकर्मी तैनात है वहीं 14,842 ''खास'' आदमियों की हिफाजत के लिए 47,557 पुलिसकर्मी तैनात हैं यानी एक ''खास'' आदमी के लिए तीन पुलिस वाले।

यदि हम राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और संसद के बेहिसाब खर्च के आंकड़े देखें तब हमें इस धनतंत्र का बोझ जनता की छाती पर पहाड़ के समान दिखता है। सबसे पहले हम 340 भव्य कक्षों वाले और कई एकड़ के बागों-पार्को वाले राष्ट्रपति भवन की चर्चा करते हैं जिसके रखरखाव पर सालाना करोड़ों रुपये खर्च होते हैं। 2007 में प्राप्त जानकारी के अनुसार राष्ट्रपति भवन की पांच साल की बिजली का बिल साढ़े 16 करोड़ था। भारत के खर्चीले और विलासी जनतंत्र और औपनिवेशिक विरासत के प्रति लगाव का एक जीवन्त प्रतीक चिन्ह है राष्ट्रपति भवन, जो कभी वायसराय का आवास स्थल हुआ करता था। इसके बाद प्रधानमंत्री कार्यालय पर नज़र डालें तो यहाँ का सालाना खर्च 21 करोड़ बैठता है और उनकी स्पेशल प्रोटेक्टशन ग्रुप के कमाण्डो द्वारा सुरक्षा व्यय करीब 270 करोड़ रुपये सालाना है। वहीं 2008-09 के दौरान केन्द्रीय मंत्रालय का कुल खर्च करीब 69 खरब रुपये आँका गया है जिसका एक कारण ये भी है कि मनमोहन सिंह 50 कैबिनेट मंत्रालय सहित कुल 104 मंत्रालयों का भारी भरकम काफिला चलाते हैं जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका कुल 15 मन्त्रालयों से अपना वैश्विक साम्राज्य सँभालता है।

इसके बाद संसद (जहाँ असल में बहसबाजी, उछलकूद, नारेबाज़ी और सोने-ऊँघने से अधिक कुछ नहीं होता) की फ़िज़ूलखर्ची पर आते हैं जिसकी एक घण्टे की कार्यवाही पर 20 लाख रुपये खर्च होते हैं। संसद की कैण्टीन इतनी सब्सिडाइज्ड होती हैं कि लगभग 10 प्रतिशत मूल्य का ही भुगतान करना पड़ता हैं। संसद सदस्यों के वेतन-भत्तों का पांच सालाना व्यय देखे तो ये 10 अरब करीब बैठता है।

साफ तौर पर ये चन्द आंकड़े दुनिया के सबसे बड़े और मंहगे ''जनतंत्र'' की असलियत को बताते हैं। ऐसे में हम प्रंसगवश गांधी के एक पत्र का जिक्र करना चाहेंगे। उन्होंने 2 मार्च 1930 को तत्कालीन अंग्रेज वायसराय को लिखे गये अपने लम्बे पत्र में ब्रिटिश शासन को सबसे मँहगी व्यवस्था बताते हुए उसे जनविरोधी और अन्यायी करार दिया था। उन्होंने लिखा था: ''जिस अन्याय का उल्लेख किया गया है, वह उस विदेशी शासन को चलने के लिए किया जाता है, जो स्पष्टत: संसार का सबसे मंहगा शासन है। अपने वेतन को ही लीजिए। यह प्रतिमाह 21,000 रुपये से अधिक पड़ता है, भत्ते आदि अलग से। आपको 700 रुपये प्रतिदिन से अधिक मिलता है, जबकि भारत में प्रतिव्यक्ति दैनिक औसत आमदनी दो आने है। इस प्रकार आप भारत की औसत आमदनी से 5 हजार गुने से भी अधिक ले रहे हैं। वायसराय के बारे में जो सच है, वह सारे आम शासन के बारे में है।'' गाँधी द्वारा उठाये गये इस सवाल की कसौटी पर जब हम आज के भारत की संसदीय शासन प्रणाली को कसते हैं तो पाते हैं कि ये औपनिवेशिक शासन से भी कई गुना अधिक महँगी है।

ऐसे में सुप्रीम कोर्ट द्वारा लाल बत्ती हटाने के फैसले के बाद भी हमें समझने की जरूरत हैं कि पूँजीवादी संसदीय जनवाद अपनी इस खर्चीली धोखाधड़ी और लूटतन्त्र की प्रणाली में बदलाव नहीं लाने वाला है और वैसे भी लोकतंत्र का मतलब सिर्फ वोट देने का अधिकार नहीं होता। असल में भारतीय राज्य व्यापक मेहनतकश जनता का राज्य नहीं बल्कि मुट्ठी भर पूँजीपतियों की तानाशाही वाला राज्य है। समाजवाद ही जनता की असली मुक्ति और जनवाद को कायम कर सकता है जहाँ उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढाँचे पर उत्पादन करने वाले सामाजिक वर्ग काबिज हों, फैसले की पूरी ताकत वास्तव में उन्हीं के हाथों में हो। इसलिए अब हमें तय करना हैं कि हमें क्या चुनाना हैं समाजवाद या पूँजीवाद!

– अजय

मानवीय अंगों की तस्करी का फैलता कालाबाज़ार

(पेज 4 से आगे)

अपने गुर्दे बेचे जिनमें से दो-तिहाई मामलों में ख़रीदार विदेशी नागरिक थे। वहीं भारत में भी प्रति वर्ष गुर्दा बेचने वालों की संख्या 2000 से ऊपर ही होने का अनुमान है। एक अध्ययन ने तो यहाँ तक कहा है कि हर साल 4,000 कैदियों को मार दिया जाता है ताकि 8000 गुर्दों तथा 3000 जिगर का इन्तज़ाम हो सके जिनके ज़्यादातर ग्राहक अमीर देशों के मरीज़ होते हैं।

बीते कुछ दशकों में मानवीय अंगों की "माँग" में भारी बढ़ोतरी हुई है। अकेले अमेरिका में ही एक लाख से ऊपर (1,11,000) लोग अंग-बदलने का आपरेशन करवाने के इन्तजार में हैं। इनमें से 96,000 लोग गुर्दा बदलवाने के लिए लाइन में लगे हुए हैं। हर वर्ष 6,000 लोग आपरेशन का इन्तजार करते हुए मर जाते हैं। यूरोपीय देशों में भी यही स्थिति है औए अब भारत, दक्षिण अफ्रीका, चीन जैसे देश इस सूची में शामिल हो चुके हैं। इसका एक कारण तो बीते कुछ दशकों में चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति है जिसके चलते अब यह सम्भव हो गया है कि दवाओं की सहायता से किसी दूसरे आदमी से प्राप्त मानवीय अंग को मानवीय शरीर में लम्बे समय तक काम करने लायक बनाये रखा जा सकता है जो पहले सम्भव नहीं था। इसलिए अंग-बदलने की तकनीक उन मरीज़ों के लिए ज़्यादा समय तक ज़िन्दा रहने की उम्मीद लेकर आयी है जिनका कोई न कोई अन्दरूनी अंग खास तौर पर गुर्दा, जिगर, दिल आदि स्थाई रूप में खराब हो चुका है। ज़ाहिर सी बात है कि जब इलाज उपलब्ध है और आदमी के पास पैसा भी है, तो कोई भी मरना नहीं चाहेगा। माँग बढ़ने का दूसरा कारण इन अंगों को खराब करने वाली बिमारियों का बढ़ना भी है। उदाहरण के लिए, गुर्दे खराब होने का मुख्य कारण मधुमेह और उच्च रक्तचाप है, गुर्दे खराब होने के दो-तिहाई से ज़्यादा मामलों में ये दोनों कारण होते हैं। यह बीमारियाँ जहाँ अमेरिका तथा दूसरे विकसित पूँजीवादी देशों में बढ़ी-फूली हैं, वहीं तीसरी दुनिया के देशों में इन बीमारियों ने पिछले कुछ दशकों में पैर पसारे हैं क्योंकि पूँजीवादी विकास के साथ-साथ, खास तौर पर नवउदारवादी नीतियों के बाद यहाँ भी अच्छी-खासी संख्या में एक अमीर उच्च-मध्यवर्गीय तबका पैदा हुआ है। इस सुविधापरस्त तबके की बीमारियाँ भी अमेरिका-यूरोप के अमीरों वाली ही हैं। यह तबका चिकित्सा सहित हर सुविधा पैसे के दम खरीद लेना चाहता है और खरीदता भी है, मानवीय अंग खरीदने के लिए भी यह तबका हर कीमत देने के लिए तैयार रहता है। इसके चलते मानवीय अंगों की तस्करी भारी मुनाफे वाला धन्धा बन गयी है। वैसे तो हर मरीज़ के इतने रिश्तेदार -सबन्धी होते हैं कि उनमें से कोई एक अपने बीमार आदमी को कम-से-कम गुर्दा बदलने के लिए तो अंगदान कर ही सकता है, मगर जब मानवीय अंग पैसे से खरीदे जा सकते हों तो कोई ऐसा क्यों करे। कहने को तो ईरान को छोड़कर बाकी सभी देशों में मानवीय अंगों को पैसे के बदले बेचने पर क़ानूनी बंदिश है, मगर वह क़ानून ही क्या हुआ जो अमीरों के लिए चोर-मोरी न रखे। क़ानून के अनुसार कोई भी आदमी जो मरीज़ के लिए "स्नेह" की भावना रखता है, वह मरीज़ को अपना अंगदान कर सकता है। इन्हीं "स्नेही" भावनाओं का इस्तेमाल अमृतसर गुर्दा कांड में शामिल लोग करते थे और बाकी सभी जगह भी ऐसा ही होता है। आश्चर्य की बात यह है कि लगभग हर जगह ग़रीब आदमी के मन में ही अमीर आदमी के लिए "स्नेही" भावनाएं जागती हैं, कभी इसका उल्टा नहीं होता?

इस धन्धे ने ग़रीबों को अमीरों के लिए "स्पेयर पार्ट" की दुकानों में बदल दिया है, कोई अंग खराब हुआ तो किसी ग़रीब की मजबूरी का फायदा उठाकर उससे कुछ पैसों में ख़रीद लो। एक अध्ययन के अनुसार भारत में 71 प्रतिशत "अंगदानी" ग़रीबी रेखा के नीचे रहने वाले होते हैं, और यह भी सामने आया है कि उनमें से ज़्यादातर लोग 20-40 वर्ष आयु के बेरोज़गार होते है जो रोज़गार के लिए भटकते हुए मानवीय अंगों के तस्करों के हत्थे चढ़ जाते हैं। इसी अध्ययन से यह भी पता चला कि 96 प्रतिशत अंग बेचने वालों ने ऐसा अपने सिर चढ़ा कर्ज़ उतारने के लिए किया, मगर अंग बेचने के बाद भी 75 प्रतिशत अपना कर्ज़ न उतार सके। असल में कई बार तो दलाल अंग निकाल लेने के बाद पैसा देने से ही मुकर जाते हैं और या फिर अक्सर पहले तय हुए पैसों से कम देते हैं, क्योंकि सारा काम गैरक़ानूनी होता है। दलालों के पास अपने गुण्डे भी होते हैं, इसलिए ग़रीब आदमी चुप बैठ जाते हैं। वैसे भी इस धन्धे में लगे दलाल अंग बेचने वालों को कुछ हजार रुपये ही देते हैं, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में एक गुर्दे का "रेट" 25,000 अमेरिकी डालर यानी 15 लाख रुपये (तीसरी दुनिया के देशों में) से लेकर 1,50,000 अमेरिकी डालर यानी 90 लाख रुपये (विकसित पूँजीवादी देशों में) तक है। "रेट" के इस अन्तर की वजह से "ट्रांसप्लांट टूरिज़्म" का बिज़नेस खड़ा हो गया है जिसके चलते विकसित देशों के अमीर "बीमार" अपने देशों में अंग बदलवाने की जगह ग़रीब देशों में आकर आपरेशन करवाने लगे हैं और इन देशों के कई सारे अस्पतालों का काम "चल" निकला है। इससे मानवीय अंगों की तस्करी का धन्धा और फैला है और दलालों-अस्पतालों-सरकारी अफसर-शाही का गठबन्धन बन गया है।

इस धन्धे में ग़रीबों की आर्थिक लूट तो होती ही है, अंग बेचने के बाद उनके लिए और भी परेशानियाँ खड़ी हो जाती हैं। आपरेशन के दौरान या बाद में पैदा होने वाली चिकित्सीय समस्याओं के लिए दलाल अक्सर ही उनको लावारिस छोड़ देते हैं जिस के चलते या तो वह मौत के मुँह में चले जाते हैं या फिर लम्बे समय तक और कई बार उम्र भर ले लिए नाकारा हो जाते हैं। आपरेशन के दौरान ठीक-ठाक रहने वालों में भी 58 प्रतिशत में बाद में स्वास्थ्य पर बुरे प्रभाव सामने आते हैं, 75 प्रतिशत अंग बेचने वाले लोग पछतावा, अपराध-बोध और अवसाद (डिप्रेशन) को झेलते हैं। इन सब कारणों के चलते वे पहले जितना काम करने के लायक नहीं रहते, और क्योंकि इनमें से ज़्यादातर सख़्त शारीरिक मेहनत वाला काम करने वाले होते हैं, इसलिए बहुतेरों का काम छूट जाता है। मगर सवाल सिर्फ आर्थिक लूट और चिकित्सीय समस्याओं का नहीं है, असल सवाल तो मानवीय गरिमा का है। एक आदमी को ग़रीब होने के कारण, जीने के संसाधन न होने के कारण आपने शरीर के अंग बेचने पड़ें, इससे बड़ा धक्का उस आदमी की मानवीय गरिमा के लिए क्या हो सकता है? सवाल यह भी है कि समाज के एक छोटे से तबके को उसके आरामतलबी से भरे जीने के ढंग से लगी बीमारियों की कीमत समाज का दूसरा वर्ग क्यों चुकाये?

कुछ क़ानून-विशेषज्ञ, कुछ "ज़्यादा" पढ़-लिख गये लोगों तथा कई सारी "समाज-सेवी" गैर-सरकारी संस्थाओं आदि ने अब यह कहना शुरू कर दिया है कि अंग बेचने को ईरान की तरह क़ानूनी मान्यता दी जाये, इसके पक्ष में वह ईरान की मिसाल देते हैं जहाँ पर अंग-बेचना क़ानूनी होने के कारण अंग-खरीदने वालों को "वेटिंग" में नहीं लगना पड़ता। पूँजीवादी ढांचे के ये टुकड़खोर हर उस गैर-मानवीय, इंसान की संवेदना को झकझोरने वाले घटनाक्रम को क़ानूनी बना देना चाहते हैं जिसे पूँजीवादी ढाँचा मानवता के ऊपर थोपता है। ये लोग कभी वेश्यावृत्ति को क़ानूनी मान्यता देने की माँग करते हैं, कभी अंग-बेचने को, तो कभी ब्लू-फिल्मों के कारोबार को। असल में इनका एक ही मकसद होता है कि पूँजीवादी ढाँचे के अमानवीय लक्षणों को (और अब पूँजीवाद के पास कुछ भी मानवीय रहा नहीं है) आम लोगों की चेतना में "नॉर्मल" बना दिया जाये। इस तरह इनके ख़िलाफ़ लड़ने, इनको ख़त्म करने का (और साथ ही पूँजीवाद को ख़त्म करने का) सवाल ही ख़त्म हो जाये। ये लोग अंग-बेचने को महज़ एक "आर्थिक" मामला बना देते हैं (पूँजीवाद में और क्या हो सकता है??)। इसके साथ जुड़े दूसरे सवालों को जैसे, क्या ग़रीबों की कोई मानवीय गरिमा नहीं होती, कोई इतना ग़रीब ही क्यों है कि उसे अपने अंग बेचने पड़ें, क्या ग़रीब अमीरों के लिए स्पेयर पार्ट की दुकानें हैं, आखिर अमीरों के ही ज़्यादा गुर्दे क्यों फेल होते हैं, क्या मुख्य ज़ोर अंगों की सप्लाई बढ़ाने पर होना चाहिए या फिर माँग कम करने पर, और ऐसे ही बहुत सारे अन्य असुविधाजनक सवालों को गोल कर जाते हैं क्योंकि ये सवाल पूरे सामाजिक ढाँचे, पूँजीवाद की पतनशीलता, और इस बात की तरफ ध्यान खींचते हैं कि पूँजीवाद मानवता के लिए कितना असहनीय हो चुका है। इनका बस एक उदेश्य है कि कैसे अमीरों के लिए मानवीय अंगों की सस्ती, बेरोकटोक, क़ानूनी सप्लाई पक्की की जा सके और साथ ही अंगों की ख़रीद-बेच अमानवीय बात न होकर आम बिज़नेस के रूप में मानवीय समाज में स्थापित हो जाये।

कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है? (समापन किस्त)

● आनन्द सिंह

उपसंहार—3

सोवियत संघ में वास्तविक जनवाद क़ायम होने का सबसे बड़ा उदाहरण सोवियतें थीं जो गाँव के स्तर की प्रतिनिधिमूलक संस्थायें थीं। सोवियतें किस प्रकार काम करती थीं इसकी एक झलक हमें रूसी क्रान्ति के चश्मदीद गवाह अमेरिकी पत्रकार अल्बर्ट रीस विलियम्स की पुस्तक 'अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन' में मिलती हैं। इस पुस्तक में विलियम्स लिखते हैं, "सोवियतें जनता के दैनिक अनुभवों का अंग बन गयी थीं। इनके द्वारा उन्होंने अपनी हार्दिक आकांक्षायें पूरी की थीं। इन सोवियतों को चुनने वाले लोग मेहनतकश और शोषित जनसाधारण थे। बुर्जुआ वर्ग को वर्जित किया गया था। चुनाव की सारी नौकरशाही औपचारिकतायें ख़त्म कर दी गई थीं। जनसाधारण खुद चुनाव की व्यवस्था और तारीख निर्धारित करते थे। उन्हें किसी भी चुने हुए व्यक्ति को कभी भी वापस बुलाने का पूरा अधिकार और पूरी आज़ादी थी।"

सोवियतों के बारे में लेनिन ने लिखा है, "इन सोवियतों के हाथ में केवल क़ानून बनाने और उन्हें लागू करने के अधिकार ही नहीं थे, बल्कि सोवियतों के सभी सदस्यों के मार्फ़त क़ानूनों को प्रत्यक्ष रूप से लागू करने के अधिकार भी थे। ताकि धीरे-धीरे समूची आबादी विधायी प्रकार्य और राजनीतिक प्रशासन के संचालन में पदार्पण कर सके।"

प्रबोधनकालीन आदर्शों स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व के वास्तव में अमल में आने का दूसरा सबसे बड़ा उदाहरण चीन में वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में सम्पन्न हुई 1949 की नवजनवादी क्रान्ति के बाद देखने को मिला। क्रान्ति पूर्व चीन एक बेहद पिछड़ा हुआ अर्द्ध-सामन्ती और अर्द्ध-औपनिवेशिक देश था जहाँ की बहुसंख्यक किसान आबादी ग़रीबी, कंगाली, भुखमरी और कुपोषण से त्रस्त थी। हर साल लगभग 40 लाख लोग बीमारी और दवा के अभाव में दम तोड़ देते थे। वहाँ की 6 करोड़ आबादी अफ़ीम की लत का शिकार थी। वहाँ महिलाओं को दोयम दर्ज़े का नागरिक समझा जाता था, आज के भारत की तरह वहाँ भी कन्या भ्रूण हत्या आम बात थी, वहाँ भी विवाह तय करने में मुख्य भूमिका माता-पिता और रिश्तेदारों की होती थी और युवाओं को अपना जीवनसाथी चुनने का कोई अधिकार नहीं था। इसके अतिरिक्त वहाँ एक बर्बर प्रथा यह थी कि छोटी बच्चियों के पैरों को 2-5 वर्ष की आयु से ही एक ख़ास क़िस्म के छोटे से जूते से नत्थी कर दिया जाता था ताकि उनके पैर न बढ़ सकें और सुडौल और सुन्दर दिखें। ऐसे पिछड़े और बर्बर संस्कृति वाले देश में क्रान्ति ने जो किया वह किसी चमत्कार से कम नहीं था।

क्रान्ति के बाद चीन में योजनाबद्ध विकास की शुरुआत हुई जिसमें गाँवों एवं शहरों के अन्तर, कृषि एवं उद्योग के अन्तर तथा शारीरिक श्रम एवं मानसिक श्रम के अन्तर को ख़त्म करने पर सचेतन रूप से बल दिया गया। इस योजनाबद्ध विकास का नतीजा यह हुआ कि जहाँ भारत जैसे देश आज तक खाद्य समस्या और कुपोषण जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं वहीं चीन 1970 के दशक तक आते-आते इन समस्याओं से पूरी तरह मुक्त हो चुका था, उसकी वार्षिक औद्योगिक विकास दर औसतन दस फीसदी से ऊपर और कृषि में विकास दर 3 फीसदी से ऊपर थी, जीवन प्रत्याशा जो 1949 में 32 वर्ष थी वह 1976 में 65 वर्ष हो चुकी थी, शिशु मृत्यु दर में ज़बर्दस्त गिरावट देखने को आयी थी जिसका अन्दाज़ा इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि 1970 के दशक की शुरुआत में शंघाई की शिशु मृत्यु दर न्यूयार्क सिटी से भी कम थी। स्वास्थ्य की समस्या को हल करने के लिए महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान स्वास्थ्य विश्वप्रसिद्ध 'बेयरफूट डाक्टर्स' अभियान चलाया गया जिसमें लाखों युवा किसानों और शहरी युवाओं को प्रारम्भिक चिकित्सा की तकनीकों का प्रशिक्षण देकर देश भर के गाँवों और कस्बों में भेजा गया। जहाँ अमेरिका जैसे विकसित देशों में सार्वभौमिक स्वास्थ्य व्यवस्था आज तक नहीं उपलब्ध हो पायी है वहीं चीन ने यह क्रान्ति के दो दशक बाद समाज के हर सदस्य को बेहद सस्ती दर पर चिकित्सा सेवा उपलब्ध कराकर समूचे विश्व को चकित कर दिया था।

क्रान्ति के बाद चीन में महिलाओं की स्थिति में गुणात्मक बदलाव आया। जहाँ क्रान्ति के पहले वे चहारदीवारियों में क़ैद रहती थीं, वहीं क्रान्ति के बाद बड़े पैमाने पर सामुदायिक भोजनालयों, सामुदायिक लॉण्ड्री, शिशु घरों आदि को बढ़ावा देने से महिलाएँ सामाजिक उत्पादन में बढ़चढ़ कर हिस्सा लेने लगीं। क्रान्ति के कुछ ही महीनों के भीतर विवाह क़ानून 1950 बनाया गया जिसमें लड़के और लड़कियों की मर्ज़ी से शादी, तलाक़ का अधिकार, बच्चों के बेचने और भ्रूण हत्या पर पाबन्दी लगा दी गई थी। पूँजीवादी देशों की तरह ये महज़ कागज़ पर दिखने वाले क़ानूनी प्रावधान नहीं थे बल्कि इनको वास्तव में अमल में लाया गया था जिसकी वजह से चीन के ज्ञात इतिहास में पहली बार सामाजिक और राजनीतिक जीवन में महिलाओं को वास्तव में पुरुषों से बराबरी का दर्ज़ा मिल सका।

1949 की क्रान्ति के तुरन्त बाद चीन में "ज़मीन जोतने वाले को" के नारे के आधार पर क्रान्तिकारी भूमि सुधार हुए जो किसी भी उत्तर-औपनिवेशिक देश की तुलना में सबसे जल्दी और सबसे प्रभावी तरीक़े से सम्पन्न हुए। ग़ौरतलब है कि हालाँकि 1949 की चीनी क्रान्ति वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में सम्पन्न हुई थी, फिर भी वह एक समाजवादी क्रान्ति नहीं बल्कि एक नवजनवादी क्रान्ति थी क्योंकि 1949 तक चीनी समाज में प्रभावी उत्पादन सम्बन्ध अर्द्ध-सामन्ती और अर्द्ध-औपनिवेशिक था जिसकी वजह से वहाँ मुख्य अन्तर्विरोध सामन्तवाद और उपनिवेशवाद से था। यही वजह थी कि क्रान्ति के बाद 1954 में जब चीन का पहला संविधान बना तो उसमें चीनी राज्य को सर्वहारा की तानाशाही वाला समाजवादी राज्य नहीं बल्कि सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व और मज़दूर-किसान संश्रय पर आधारित जनता का लोकतान्त्रिक राज्य घोषित किया गया। इस संविधान में सारी सत्ता जनता को देने की घोषणा थी और राज्य के कामकाज केन्द्रीय स्तर पर राष्ट्रीय जन-कांग्रेस और विभिन्न स्तरों पर स्थानीय जन-कांग्रेसों के ज़रिये चलाने की बात कही गई थी। इसमें चीन की सभी राष्ट्रीयताओं को समानता का अधिकार और भेदभाव एवं उत्पीड़न से आज़ादी की भी बात कही गई थी। शोषण की व्यवस्था को ख़त्म कर क्रमशः समाजवादी समाज की ओर बढ़ने की भी बात कही गई थी। इसमें समूची जनता के स्वामित्व वाले सार्वजनिक उपक्रमों और राज्य फार्मों के अतिरिक्त स्वामित्व के अन्य रूपों जैसे कि सामूहिक खेती, सहकारी खेती और यहाँ तक कि निजी खेती और निजी उद्योगों के भी अधिकार दिये गये थे। परन्तु 1954 के संविधान बनने के कुछ ही वर्षों के भीतर ही चीन में समाजवादी निर्माण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी। 1958 में 'महान अग्रवर्ती छलांग' आन्दोलन के साथ ही जब समाजवादी संक्रमण ने आगे डग भरे तो जन-कम्यूनों का निर्माण पूरे चीन में एक व्यापक मुहिम के रूप में शुरू हुआ और जल्दी ही चीन की 50 करोड़ किसान आबादी 26,000 कम्यूनों में संगठित हो गई। पेरिस कम्यून के अमर नायक सर्वहारा जनवाद का जो मॉडल पेश करना चाहते थे, चीन के जन-कम्यूनों ने उन्हें साकार कर दिखाया। इन कम्यूनों ने तृण मूल स्तर पर जनवाद को लागू किया। कम्यून को अपने क्षेत्र के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक फैसलों को लेने की पूरी आज़ादी थी। सस्ते, स्थानीय विधायी एवं कार्यकारी संस्था का यह जनवादी ढाँचा व्यापक जनता की पहलक़दमी व सर्जनात्मकता को जागृत करने के साथ ही सर्वहारा वर्ग की केन्द्रीय सत्ता के व्यापक आधार का कार्य भी करता था। आगे चलकर महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान कम्यूनों और सोवियतों के प्रयोग को ही विस्तार देते हुए क्रान्तिकारी कमेटियों का गठन किया गया। इनके पीछे माओ का तर्क था कि पूँजीवादी पुर्नस्थापना को रोकने के लिए शासन और निर्णय की प्रक्रिया में जनता की प्रत्यक्ष भागीदारी ज़्यादा से ज़्यादा क़ायम करके सर्वहारा राज्य के आधारों को विस्तारित करना आवश्यक है। चीनी समाज में आये इन आमूलचूल बदलावों के मद्देनज़र 1954 का संविधान अप्रासंगिक हो चला था। अतः 1975 में एक नया संविधान बनाया गया जिसमें स्पष्ट रूप से घोषित किया गया कि चीन सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व और मज़दूर-किसान संश्रय पर आधारित सर्वहारा की तानाशाही वाला एक समाजवादी राज्य है। इस संविधान में निजी सम्पत्ति के समूल नाश और जन-कम्यूनों और क्रान्तिकारी कमेटियों को वैधता देते हुए प्रावधान भी मौजूद थे।

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि माओ की मृत्यु के बाद सत्तासीन हुई नयी पूँजीवादी सत्ता ने पहला काम यह किया कि क्रान्तिकारी कमेटियों को गैरक़ानूनी क़रार दे दिया। इसके कुछ ही वर्षों बाद गाँवों और कारखानों से जन-कम्यूनों को भंग करने की भी शुरुआत हो गई। ऐसा नये शासकों के लिए ज़रूरी था क्योंकि जन प्रतिनिधित्व की सर्वहारा संस्थाओं को भंग किये बिना वे निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों को लागू कर ही नहीं सकते थे।

पेरिस कम्यून, सोवियतें, चीन के जन-कम्यून और क्रान्तिकारी कमेटियों के प्रयोगों ने यह साफ दिखाया कि स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व के जिन आदर्शों से पूँजीपति वर्ग मुँह मोड़ चुका है उन्हें वास्तव में अमल में लाने की क्षमता केवल सर्वहारा वर्ग में ही है। इन प्रयोंगों ने यह भी साबित किया कि महँगी, भ्रष्ट, धोखाधड़ी से भरपूर पूँजीवादी संसदीय प्रणाली का विकल्प महज़ किताबी बात नहीं है, बल्कि सर्वहारा क्रान्तियों के गुजरे हुए प्रारम्भिक चक्र के दौरान ही मेहनतकश जनता इन्हें धरती पर साकार भी कर चुकी है।

भारतीय पूँजीवादी लोकतन्त्र के छलावे का विकल्प भी हमें सर्वहारा जनवाद की ऐसी ही संस्थायें दे सकती हैं जिन्हें हम लोकस्वराज्य पंचायतों का नाम दे सकते हैं। ज़ाहिर है ऐसी पंचायतें अपनी असली प्रभाविता के साथ तभी सक्रिय हो सकती हैं जब समाजवादी जनक्रान्ति के वेगवाही तूफ़ान से मौजूदा पूँजीवादी सत्ता को उखाड़ फेंका जायेगा। परन्तु इसका यह अर्थ हरगिज़ नहीं कि हमें पूँजीवादी जनवाद का विकल्प प्रस्तुत करने के प्रश्न को स्वतः स्फूर्तता पर छोड़ देना चाहिए। हमें इतिहास के अनुभवों के आधार पर आज से ही इस विकल्प की रूपरेखा तैयार करनी होगी और उसको अमल में लाना होगा। इतना तय है कि यह विकल्प मौजूदा पंचायती राज संस्थाओं में नहीं ढूँढा जाना चाहिए क्योंकि ये पंचायतें तृणमूल स्तर पर जनवाद क़ायम करने की बजाय वास्तव में मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के सामाजिक आधार को विस्तृत करने का ही काम कर रही हैं और इनमें चुने जाने वाले प्रतिनिधि आम जनता का नहीं बल्कि सम्पत्तिशाली तबकों के ही हितों की नुमाइंदगी करते हैं। ऐसे में हमें वैकल्पिक प्रतिनिधि सभा पंचायतें बनाने के बारे में सोचना होगा जो यह सुनिश्चित करेंगी कि उत्पादन, राजकाज और समाज के ढाँचे पर, हर तरफ़ से, हर स्तर पर उत्पादन करने वालों का नियन्त्रण हो - फैसले लेने और लागू करवाने की पूरी ताक़त उनके हाथों में केन्द्रित हो। यही सच्ची, वास्तविक जनवादी व्यवस्था होगी।

आइये एक ऐसी व्यवस्था और शासनप्रणाली के बारे में सोचें, जहाँ गाँव-गाँव के स्तर पर, कारखानों के स्तर पर और शहरी मुहल्लों के स्तर पर किसान, मज़दूर और आम मध्यवर्गीय जनता अपनी पहल पर खड़ी की गई प्रतिनिधिमूलक पंचायती संस्थाओं में संगठित हो। वे अपने स्तर पर प्रशासकीय और न्यायकारी दायित्व भी सँभालें और ऊपर के स्तर के लिए अपने प्रतिनिधियों का प्रत्यक्षतः चुनाव करते हों जिसमें न तो धन की और न ही नौकरशाही की कोई भूमिका हो। ये पंचायतें गाँवों, मुहल्लों, जिलों और राज्यों से लेकर केन्द्रीय स्तर तक एक पिरामिडीय संरचना में एक दूसरे से सम्बद्ध होंगीं। निर्वाचक मण्डलों का आकार छोटा होगा ताकि ऐसा न हो कि कोई प्रत्याशी धन की कमी की वजह से अपनी बात लोगों तक नहीं पहुँचा सके। इस प्रकार यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि हर आम नागरिक को चुनने और चुने जाने का समान अधिकार हो। पर शोषक वर्गों को यह अधिकार तभी मिलने चाहिए जब नयी व्यवस्था के प्रति उनकी वफ़ादारी सिद्ध हो जाये। निर्वाचकों को यह भी पूरा अधिकार हो कि चुने गये प्रतिनिधियों को वे जब चाहें

(पेज 14 पर जारी)

मज़दूरों का राजनीतिक अख़बार एक क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने के लिए ज़रूरी है

● लेनिन

...यदि स्थानीय पैमाने पर मज़बूत राजनीतिक संगठन प्रशिक्षित नहीं किये जाते, तो एक अखिल रूसी अख़बार का बहुत बढ़िया संगठन करने से भी कोई लाभ न होगा। बिल्कुल सही है। लेकिन यही तो असल बात है कि मज़बूत राजनीतिक संगठनों को प्रशिक्षित करने का एक अखिल रूसी अखबार के अलावा और कोई तरीक़ा नहीं है। ईस्क्रा ने अपनी ''योजना'' पेश करने से पहले जो महत्वपूर्ण बातें कही थी, उसे लेखक ने एकदम भुला दिया है। ईस्क्रा ने कहा था : ''एक ऐसे क्रान्तिकारी संगठन के निर्माण का नारा देना'' आवश्यक है, ''जिसमें केवल नाम के लिए नहीं, बल्कि कार्यरूप में सभी शक्तियों को एकत्रित करने और आन्दोलन का नेतृत्व करने की क्षमता हो, यानि जो संगठन प्रत्येक विरोध-आन्दोलन और प्रत्येक विस्फोट का किसी भी क्षण समर्थन करने को तैयार रहे और जो उनका उपयोग उन लड़ाकू शक्तियों को बढ़ाने और मज़बूत करने के लिए करे, जो निर्णायक युद्ध के लिए आवश्यक होगी।'' परन्तु – ईस्क्रा ने आगे लिखा था - फरवरी और मार्च की घटनाओं के बाद अब इस बात को सिद्धान्त रूप में हर आदमी मान लेगा। फिर भी हमें जिस चीज़ की आवश्यकता है, वह यह नहीं है कि इस समस्या का सिद्धान्त रूप में हल निकाला जाये, बल्कि यह कि उसका कोई व्यावहारिक हल निकले। हमें तुरन्त कोई निश्चित रचनात्मक योजना पेश करनी चाहिए, ताकि हर आदमी निर्माण का काम आरम्भ कर सके और हर तरफ़ से संगठन बनना शुरू हो जाये। लेकिन हमें फिर व्यावहारिक हल से हटाकर एक ऐसे तथ्य की ओर घसीटा जा रहा है, जो सिद्धान्त रूप में तो बिल्कुल सही, निर्विवाद और महान तथ्य है, पर आम मज़दूरों की दृष्टि से एकदम नाकाफ़ी और क़तई समझ में न आने वाला तथ्य है, यानि ''मज़बूत राजनीतिक संगठनों को प्रशिक्षित करना''! सुयोग्य लेखक महोदय, यहाँ सवाल यह नहीं है। सवाल यह है कि प्रशिक्षण देने का काम किस तरह किया जाये और सम्पन्न किया जाये!

यह कहना सही नहीं है कि ''अभी तक हम मुख्यतया सजग मज़दूरों के बीच ही काम करते रहे हैं और आम मज़दूर प्राय: केवल आर्थिक संघर्ष में लगे रहे हैं।'' इस रूप में तो यह प्रस्थापना सजग मज़दूरों को ''आम'' मज़दूरों के मुक़ाबले खड़ा करने की उस प्रवृत्ति का रूप धारण कर लेती है, जो स्वोबोदा में अक्सर दिखायी पड़ती है और जो बुनियादी तौर पर ग़लत है। हमारे यहाँ पिछले कुछ वर्षों में तो सजग मज़दूर भी ''प्राय: केवल आर्थिक संघर्ष में लगे रहे हैं''। पहली बात यह है। दूसरी बात यह है कि यदि हम सजग मज़दूरों और बुद्धिजीवियों, दोनों के बीच से इस संघर्ष के लिए नेता प्रशिक्षित करने में मदद नहीं करेंगे, तो जनता राजनीतिक संघर्ष चलाना कभी नहीं सीखेगी, और ऐसे नेता प्रशिक्षण केवल इसी तरीक़े से पा सकते हैं कि वे हमारे राजनीतिक जीवन के सभी कोशिशों का नियमित रूप से, दैनन्दिन मूल्यांकन करते चलें। इसलिए ''राजनीतिक संगठनों के प्रशिक्षण'' की बातें करना और साथ ही राजनीतिक अखबार के ''काग़ज़ी काम'' का ''स्थानीय पैमाने पर किये जाने वाले सजीव राजनीतिक काम'' से मुक़ाबला करना एकदम हास्यास्पद बात है! अरे, ईस्क्रा ने तो अपनी अखबार की ''योजना'' को बेरोजगारों के आन्दोलन, किसानों के विद्रोहों, जेम्स्त्वो के सदस्यों के असन्तोष और ''जारशाही के बाशीबुजूक (18-19वीं शताब्दियों की तुर्क सेना के अनियमित दस्ते। इन दस्तों के सैनिक अपनी अनुशासनहीनता, क्रूरता और लूटमार के लिए कुख्यात थे।- सं.) के खिलाफ़ जनता के क्रोध'', आदि का समर्थन करने के लिए ''जुझारू मुस्तैदी'' पैदा करने की ''योजना'' के ही अनुरूप बनाया है। हर आदमी, जिसे आन्दोलन की थोड़ी भी जानकारी है, अच्छी तरह जानता है कि स्थानीय संगठनों में से अधिकतर इन चीज़ों के बारे में कभी सपने में भी नहीं सोचते; कि ''सजीव राजनीतिक काम'' की जिन सम्भावनाओं की ओर यहाँ संकेत किया गया है, उनमें से कई ऐसी हैं, जिन्हें एक भी संगठन कभी कार्यान्वित नहीं कर पाया है; कि, मिसाल के लिए, जब जेम्स्त्वो के बुद्धिजीवियों में बढ़ते हुए असन्तोष और विरोध की ओर ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की जाती है, तो नदेज्दिन (''हे भगवान, तो क्या यह अखबार जेम्स्त्वो के लिए निकाला गया है?''-पूर्वबेला, पृ. 129), ''अर्थवादी'' (ईस्क्रा के अंक 12 में प्रकाशित उनका पत्र) और बहुत-से व्यावहारिक कार्यकर्ता एकदम निराश और चिन्तित हो उठते हैं। ऐसी हालत में ''शुरू करने'' का केवल यही तरीक़ा हो सकता है कि लोगों को इन तमाम चीज़ों के बारे में सोचने के लिए प्रेरणा दी जाये और उन्हें प्रेरणा दी जाये कि वे असन्तोष और सक्रिय संघर्ष के सभी विविध रूपों का जोड़ लगायें और सामान्यीकरण करें। आज, जब कि सामाजिक-जनवादी कार्यभारों को बहुत निचले स्तर पर लाया जा रहा है, ''सजीव राजनीतिक काम'' को केवल सजीव राजनीतिक आन्दोलन से आरम्भ किया जा सकता है, और यह उस वक़्त तक नहीं हो सकता, जब तक कि हमारे पास एक ऐसा अखिल रूसी अखबार न हो, जो जल्दी-जल्दी निकले और उसका सही तौर पर वितरण हो।

जो लोग ईस्क्रा की ''योजना'' को ''साहित्यिकपने'' का सूचक समझते हैं, उन्होंने योजना का सारतत्व जरा भी नहीं समझा है और वे सोचते हैं कि इस समय सबसे उपयोगी साधन के रूप में जिस चीज़ का सुझाव दिया गया है, वही लक्ष्य है। प्रस्तावित योजना के स्पष्टीकरण के लिए जो दो उपमाएँ दी गयी थीं, उनका अध्ययन करने की तक़लीफ़ इन लोगों ने गवारा नहीं की है। ईस्क्रा ने लिखा था : एक अखिल रूसी राजनीतिक अखबार का प्रकाशन वह मुख्य सूत्र होना चाहिए, जिसके सहारे हम इस संगठन को (अर्थात एक ऐसे क्रान्तिकारी संगठन को, जो प्रत्येक विरोध आन्दोलन और प्रत्येक विस्फोट का समर्थन करने के लिए सदा तैयार रहे) अडिग भाव से विकसित कर सकेंगे तथा उसे अधिक गहरा और व्यापक बना सकेंगे। अब मुझे कृपया यह बताइये : जब राजगीर लोग कोई बहुत बड़ी इमारत खड़ी करने के लिए, जितनी बड़ी इमारत पहले कभी न देखी गयी हो, उसके अलग हिस्से में ईंटे बिछाते हैं, तब वे यदि प्रत्येक ईंट के वास्ते ठीक स्थान का पता लगाने के लिए, पूरे काम के अन्तिम लक्ष्य को सदा अपने सामने रखने के लिए और न केवल हरेक ईंट का, बल्कि ईंट के हरेक टुकड़े का सही इस्तेमाल करने के लिए, ताकि वह पहले बिछायी गयी और बाद में बिछायी जाने वाले ईंटों के साथ जुड़कर एक पूर्ण और सबको मिलाकर चलने वाली रेखा बन जायें - इस सबके लिए यदि वह एक डोरी इस्तेमाल करते हैं, तो क्या उसे ''काग़ज़ी'' काम कहा जायेगा? और क्या अपने पार्टी जीवन में हम ठीक एक ऐसे ही समय से नहीं गुजर रहे हैं, जब कि हमारे पास ईंटें और राजगीर तो हैं, पर सबका पथ प्रदर्शन करने वाली यह डोरी नहीं है, जिसे सब देख सकें और जिसके मुताबिक सभी काम कर सकें? उन लोगों को चिल्लाने दीजिए, जो यह कहते हैं कि हम डोरी तानकर अपना हुक्म चलाते हैं : महानुभावो, यदि हम अपना हुक्म चलाना चाहते, तो अपने मुखपृष्ठ पर हम ''ईस्क्रा, अंक 1'' न लिखकर ''राबोचाया गजेता, अंक 3'' लिखते, और जैसा कि हमसे अनेक साथी लिखने के लिए कह रहे थे और जैसा कि लिखने का हमें ऊपर बतायी गयी घटनाओं के बाद पूरा अधिकार होता। परन्तु हमने यह नहीं किया। हम हर जगह के झूठे सामाजिक-जनवादियों से निर्ममतापूर्वक लड़ने के लिए अपने हाथों को स्वतन्त्र रखना चाहते थे; हम यह चाहते थे कि यदि हमने सही ढंग से अपनी डोरी तानी है, तो लोग उसका आदर इसलिए करें कि वह सही है, इसलिए नहीं कि उसे अधिकृत मुखपत्र ने ताना है।

''स्थानीय कार्य को केन्द्रीय संस्थाओं के रूप में जोड़ने का प्रश्न एक गोरखधन्धा बन गया है,'' ल. नदेज्दिन हमें उपदेश देते हुए फरमाते हैं, ''एकता के लिए एकरूप तत्वों की आवश्यकता होती है, और यह एकरूपता उसी चीज़ से पैदा हो सकती है, जो दूसरों को जोड़ती हो; लेकिन यह जोड़ने वाला तत्व मज़बूत स्थानीय संगठनों की ही उपज हो सकता है, जो इस समय अपनी एकरूपता के लिए कतई प्रसिद्ध नहीं है।'' यह सत्य भी उतना ही प्राचीन तथा निर्विवाद है, जितना यह सत्य कि हमें मज़बूत राजनीतिक संगठनों को प्रशिक्षित करना चाहिए। और यह सत्य उतना ही बंजर भी है। हर सवाल ''एक गोरखधन्धा है'', क्योंकि पूरा राजनीतिक जीवन एक ऐसी अन्तहीन जंज़ीर है, जो असंख्य कड़ियों से बनी है। राजनीतिज्ञ की पूरी कला इस बात में निहित है, कि वह उस कड़ी का पता लगा सके और उस कड़ी को ज़्यादा से ज़्यादा मज़बूती से पकड़ सके, जिसके हमारे हाथों से छीन लिये जाने का सबसे कम अंदेशा हो, जो उस समय सबसे अधिक महत्वपूर्ण कड़ी हो और जिसको पकड़ लेने से पूरी ज़ंजीर पर क़ाबू पा लेने की गारण्टी हो जाये। यदि हमारे पास ऐसे अनुभवी राजगीरों का एक दल हो, जो मिलकर काम करने में इतने दक्ष हों कि वे बिना किसी निर्देशक डोरे के ईंटों को बिल्कुल सही स्थान पर बिछा सकते हों (और सिद्धान्त रूप में यह बात असम्भव हरगिज नहीं है), तो उस समय शायद हम किसी और कड़ी को पकड़ सकें, परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि हमारे पास ऐसे अनुभवी राजगीर अभी नहीं हैं, जिन्हें दल बनाकर काम करना आता हो, अक्सर ऐसी जगहों पर ईंटें बिछा दी जाती हैं, जहाँ उनकी कोई ज़रूरत नहीं होती, ईंटें एक सामान्य डोरे के अनुसार नहीं बिछायी जातीं, बल्कि इस तरह बिखेर दी जाती हैं कि दुश्मन इन्हें आसानी से ढहा सकता है, मानो वे ईंट नहीं, बालू के कण हों।

अब दूसरी उपमा को लीजिए : ''अखबार न केवल सामूहिक प्रचारक और सामूहिक आन्दोलनकर्ता का, बल्कि सामूहिक संगठनकर्ता का भी काम करता है। इस दृष्टि से उसकी तुलना किसी बनती हुई इमारत के चारों ओर बाँधे गये पाड़ से की जा सकती है; इससे इमारत की रूपरेखा प्रकट होती है और इमारत बनाने वालों को एक-दूसरे के पास आने-जाने में सहायता मिलती है, इससे वे काम का बँटवारा कर सकते हैं, अपने संगठित श्रम द्वारा प्राप्त आम परिणाम देख सकते हैं।'' क्या इस उद्धरण से यह मालूम होता है कि कोई कुर्सीतोड़ लेखक अपनी भूमिका को बढ़ा-चढ़ाकर बता रहा है? पाड़ इमारत के काम नहीं आता, उसे खड़ा करने में सबसे सस्ता सामान इस्तेमाल किया जाता है; उसे अस्थायी रूप से, कुछ समय के लिए ही बनाया जाता है और जैसे ही इमारत का ढाँचा बनकर तैयार हो जाता है, वैसे ही पाड़ को गिराकर उसकी लकड़ी जलाने के काम में ले ली जाती है। जहाँ तक क्रान्तिकारी संगठनों की इमारत बनाने का सवाल है, अनुभव यह बताता है कि कभी-कभी वह बिना पाड़ बाँधे भी बनायी जा सकती है - उदाहरण के लिए, पिछली शताब्दी के आठवें दशक को ले लीजिए। लेकिन वर्तमान समय में यह बात नहीं सोची जा सकती कि जिस इमारत की हमें ज़रूरत है, वह बिना पाड़ बाँधे भी बन सकती है।

फासीवाद जब भी हिंसा का इस्तेमाल करता है, उसका प्रतिकार सर्वहारा हिंसा द्वारा किया जाना चाहिए। यहाँ मेरा मतलब व्यक्तिगत आतंकवादी कार्रवाइयों से नहीं है, बल्कि सर्वहारा वर्ग के संगठित क्रान्तिकारी वर्ग संघर्ष की हिंसा से है। फैक्ट्री "हण्ड्रेड्स" को संगठित करके जर्मनी ने एक शुरुआत कर दी है।

यह संघर्ष तभी सफल हो सकता है जब एक सर्वहारा संयुक्त मोर्चा होगा। इस संघर्ष के लिए पार्टी-प्रतिबद्धताओं को लाँघकर मज़दूरों को एकजुट होना होगा। सर्वहारा संयुक्त मोर्चे की स्थापना के लिए सर्वहारा की आत्मरक्षा सबसे बड़े उत्प्रेरकों में से एक है। हर मज़दूर की आत्मा में वर्ग-चेतना को बैठाकर ही हम फासीवाद को सामरिक बल से उखाड़ फेंकने की तैयारी में भी सफल हो पायेंगे, जो कि इस मुकाम पर सर्वाधिक ज़रूरी है।

– क्लारा ज़ेटकिन (1923)

मज़दूर वर्ग के लिए कोई शॉर्टकट नहीं, इस ढाँचे के आमूल बदलाव की लम्बी लड़ाई ही एकमात्र रास्ता!

(पेज 1 से आगे)

मुकर चुके हैं।

दरअसल 'आप' का उभार पूँजीवादी संकट से पैदा हुई अस्थिरता के बीच के दौर की एक अस्थायी परिघटना है। कुछ लोकलुभावन हवाई नारों के अलावा इसके पास कोई ठोस आर्थिक-राजनीतिक कार्यक्रम है ही नहीं। निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों का इनके पास कोई विकल्प नहीं है। अभी तक ये आर्थिक नीतियों पर चुप्पी साधे रहते थे लेकिन अब केजरीवाल और योगेन्द्र यादव जैसे इनके नेताओं के बयानों से इनकी कलई खुलने लगी है। पूर्व एन.जी. ओपंथियों-समाजवादियों-सुधारवादियों का यह जमावड़ा नवउदारवादी नीतियों का विरोधी है ही नहीं। अब ये खुलकर कहने लगे हैं कि वे निजी उद्योग-व्यापार को खुलकर काम करने की छूटें देने के पक्ष में हैं और सरकार को पूँजीपतियों के काम में किसी तरह की रोकटोक नहीं करनी चाहिए। दिल्ली विधानसभा चुनाव के समय ठेका मज़दूरी ख़त्म करने और श्रम क़ानूनों को लागू करने के जो वादे इन्होंने वोट बटोरने के लिए किये थे उनसे ये डेढ़ महीने के भीतर ही साफ़ मुकर चुके हैं।

आप पार्टी के लोग राष्ट्रीय विकल्प बनने की बातें तो करते हैं मगर राष्ट्रीय महत्व के हर ज़रूरी मुद्दे पर सवालों से बचते हैं। दिल्ली में खुदरा कारोबार में विदेशी निवेश पर रोक लगाने से कुछ लोगों को भ्रम हो सकता है कि ये नवउदारवादी नीतियों के विरुद्ध हैं। मगर ऐसा नहीं है। खुदरा व्यापार में बड़ी पूँजी के एकाधिकार को लेकर आज पूरी दुनिया में पूँजीपतियों के बीच दो लॉबियाँ हैं। एक लॉबी का मानना है कि एकाधिकारीकरण से लम्बे दौर में अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचता है। अमेरिका और यूरोप में भी वॉलमार्ट जैसी कम्पनियों का विरोध करने वाले पूँजीपतियों की लॉबियाँ हैं। इसलिए एफडीआई पर रोक लगाना कोई क्रान्तिकारी क़दम नहीं है। ये मोदी के सवाल पर सिर्फ़ यह कहते हैं कि भाजपा और कांग्रेस दोनों की नीतियाँ एक है। मोदी के राज्य में भी भ्रष्टाचार है, आदि-आदि। मगर मोदी की साम्प्रदायिक नीति पर, उसकी घनघोर कट्टरपंथी राजनीति पर यह कुछ नहीं कहते। गुजरात में हुए क़त्लेआम पर यह कभी चर्चा नहीं करते। कुमार विश्वास जैसे इसके नेता मोदी के कसीदे पढ़ते पढ़ते हैं। केजरीवाल जातिवादी फासिस्ट संस्कृति के प्रतीक खाप पंचायतों का समर्थन करते हैं। पूर्वोत्तर भारत और कश्मीर में दशकों से लागू सशस्त्र बल विशेष शक्तियाँ क़ानून (एएफएसपीए) के सवाल पर अन्ना हजारे के समय से ही वे चुप्पी साधे हुए हैं। छत्तीसगढ़ में जनता के विरुद्ध जारी सरकारी युद्ध के सवाल पर ये कभी कुछ नहीं कहते।

अपने मुख्य मुद्दे भ्रष्टाचार के सवाल पर ये केवल जनलोकपाल की बात करते हैं, जन पहल की नहीं। ये जनता पर नहीं नौकरशाही पर भरोसा करते हैं। हम शुरू से ही इस बात को रखते रहे हैं कि जिस पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन सामाजिक उपभोग को केन्द्र में रखकर नहीं बल्कि मुनाफ़े को केन्द्र में रखकर होता है, वह यदि एकदम क़ानूनी ढंग से काम करे तो भी अपनेआप में ही वह भ्रष्टाचार और अनाचार है। जो पूँजीवाद अपनी स्वतन्त्र आन्तरिक गति से धनी-ग़रीब की खाई बढ़ाता रहता है, जिसमें समाज की समस्त सम्पदा पैदा करने वाली बहुसंख्यक श्रमिक आबादी की न्यूनतम ज़रूरतें भी पूरी नहीं हो पातीं, वह स्वयं एक भ्रष्टाचार है। जिस पूँजीवादी लोकतन्त्र में उत्पादन, राजकाज और समाज के ढाँचे को चलाने में सामूहिक उत्पादकों की कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं होती और निर्णय की ताक़त वस्तुत: उनके हाथों में अंशमात्र भी नहीं होती, वह एक 'धोखाधड़ी' है। भ्रष्टाचार की मात्रा घटती-बढ़ती रह सकती है, लेकिन पूँजीवाद कभी भ्रष्टाचार-मुक्त नहीं हो सकता! भ्रष्टाचार-मुक्त पूँजीवाद एक मिथक है, एक मध्यवर्गीय आदर्शवादी यूटोपिया है। भ्रष्टाचार पूँजीवादी समाज की सार्विक परिघटना है। जहाँ लोभ-लाभ की संस्कृति होगी, वहाँ मुनाफ़ा निचोड़ने की हवस क़ानूनी दायरों को लाँघकर खुली लूटपाट और दलाली को जन्म देती ही रहेगी। जनता को भ्रष्टाचार-मुक्त पूँजीवाद नहीं चाहिए बल्कि पूँजीवाद से ही मुक्ति चाहिए। जहाँ क़ानूनी शोषण और लूट होगी, वहाँ ग़ैरक़ानूनी शोषण और लूट भी होगी ही। काला धन सफ़ेद धन का ही सगा भाई होता है।

सच तो यह है कि हर पूँजीवादी लोकतन्त्र में सरकारें मूलत: पूँजीपतियों की 'मैनेजिंग कमेटी' की भूमिका निभाती हैं। संसद बहसबाज़ी का अड्डा होती है जहाँ पूँजीपतियों के हित में और जनदबाव को हल्का बनाकर लोकतन्त्र का नाटक जारी रखने के लिए वही क़ानून बनाये जाते हैं जो सरकार चाहती है और पूँजीवाद के सिद्धान्तकार जिनका खाका बनाते हैं। राज्यसत्ता का सैन्यबल हर जन विद्रोह को कुचलने को तैयार रहता है। न्यायपालिका न्याय की नौटंकी करते हुए पूँजीपतियों के हित में बने क़ानूनों के अमल को सुनिश्चित करती है, मूलत: सम्पत्ति के अधिकार और सम्पत्तिवानों के विशेषाधिकारों की हिफ़ाज़त का काम करती है तथा शासक वर्गों के आपसी झगड़ों में मध्यस्थ की भूमिका निभाती है। इन सभी कामों में लगे हुए लोग पूँजीपतियों के वफ़ादार सेवक होते हैं और सेवा के बदले उन्हें ऊँचे वेतनभत्तों और विशेषाधिकारों का मेवा मिलता है। वे जानते हैं कि वे लुटेरों के सेवक मात्र हैं। लुटेरों के सेवकों से नैतिकता, सदाचार और देशभक्ति की उम्मीद नहीं की जा सकती। तमाम सम्पत्तिधारी परजीवियों के हितों की "क़ानूनी" ढंग से रक्षा करते हुए, उन्हें जहाँ भी मौक़ा मिलता है, अपनी भी ज़ेब गर्म कर लेते हैं। समूचे पूँजीपति वर्ग के प्रबन्धकों और सेवकों के समूह के कुछ लोग, पूँजीपति घरानों की आपसी होड़ का लाभ उठाकर इस या उस घराने से रिश्वत, दलाली और कमीशन की मोटी रक़म ऐंठते ही रहते हैं। पूँजीपतियों की यह आपसी होड़ जब उग्र और अनियन्त्रित होकर पूरी व्यवस्था की पोल खोलने लगती है, और बदहाल जनता का क्रोध फूटने लगता है तथा "लूट के लिए होड़ के खेल" के नियमों को ताक पर रख दिया जाता है तो व्यवस्था-बहाली और "डैमेज कण्ट्रोल" के लिए पूँजीपतियों की संस्थाएँ (फिक्की, एसोचैम, सी.आई.आई. आदि), पूँजीवादी सिद्धान्तकार, समाजसुधारक आदि चिन्तित हो उठते हैं। जो पूँजीपति स्वयं अपने हित के लिए कमीशन और घूस जमकर देते हैं, वे भी अलग-अलग और समूह में बढ़ते भ्रष्टाचार पर चिन्ता ज़ाहिर करते हैं, सरकार की गिरती साख को बहाल करने के लिए सामूहिक तौर पर चिन्ता प्रकट करते हैं और पूँजीवाद को "भ्रष्टाचार-मुक्त" बनाने की मुहिम में लगी स्वयंसेवी संस्थाओं की उदारतापूर्वक फ़ण्डिंग करते हैं। कभी कोई नेता, कभी कोई अफ़सर, तो कभी कोई समाजसेवी भ्रष्टाचार-विरोधी मुहिम का मसीहा और 'ह्विसल ब्लोअर' बनकर सामने आता है जो पूँजीवादी शोषण-उत्पीड़न की व्यवस्था का विकल्प सुझाने के बजाय भ्रष्टाचार को ही सारी बुराई की जड़ बताने लगता है और मौजूद ढाँचे में कुछ सुधारमूलक पैबन्दसाज़ी की सलाह देते हुए जनता को दिग्भ्रमित कर देता है। वे तरह-तरह के डिटर्जेण्ट लेकर इस व्यवस्था के दामन पर लगे धब्बों को धोने की ही भूमिका अदा करते हैं। वे भ्रम का कुहासा छोड़ने वाली चिमनी, जनाक्रोश के दबाव को कम करने वाले 'सेफ़्टीवॉल्व' और व्यवस्था के पतन की सरपट ढलान पर बने 'स्पीड ब्रेकर' की ही भूमिका निभाते हैं।

राष्ट्रीय पैमाने पर आज पूँजीपति वर्ग क्या चाहता है? जैसा कि प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रभात पटनायक ने एक लेख में कहा है, वह कठोर नवउदारवाद और साफ़-सुथरे नवउदारवाद के बीच विकल्प चुन रहा है। आज पूरी दुनिया में पूँजीपति वर्ग के लिए भ्रष्टाचार पर नियंत्रण एक बड़ा मुद्दा है। ख़ास तौर पर सरकारी भ्रष्टाचार पर नियंत्रण पूँजीपति वर्ग की एक ज़रूरत है। ज़ाहिर है, लुटेरे यह नहीं चाहते कि लूट के उनके माल में दूसरे भी हिस्सा बँटायें। विश्व बैंक से लेकर तमाम अन्तरराष्ट्रीय पूँजीवादी थिंकटैंक भ्रष्टाचार, ख़ासकर सरकारी भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के लिए पिछले कुछ वर्षों में काफी सक्रिय हुए हैं। कई देशों में भ्रष्टाचार के विरुद्ध "सिविल सोसायटी" के आन्दोलनों को वहाँ के पूँजीपति वर्ग का समर्थन है। इसीलिए पूरा मीडिया 'आप' की हवा बनाने में लगा रहा है। इसीलिए अन्ना के आन्दोलन के समय से ही टाटा से लेकर किर्लोस्कर तक पूँजीपतियों का एक बड़ा हिस्सा इस आन्दोलन को समर्थन दे रहा था। और इंफोसिस के ऊँचे अफसरों से लेकर विदेशी बैंकों के आला अफसर और डेक्कन एअरलाइंस के मालिक कैप्टन गोपीनाथ जैसे उद्योगपति तक आप पार्टी में शामिल हो रहे हैं। दावोस में विश्व आर्थिक मंच में पहुँचे भारत के कई बड़े उद्योगपतियों ने कहा कि वे 'आप' के इरादों का समर्थन करते हैं। मगर अभी पूँजीपति वर्ग के बड़े हिस्से ने अपना दाँव फासिस्ट कठोरता के साथ नवउदारतावादी नीतियाँ लागू करने की बात कर रहे मोदी पर लगाया हुआ है। 'आप' अगर एक ब्लॉक के रूप में भी संसद में पहुँच गयी तो सरकारी भ्रष्टाचार पर कुछ नियंत्रण लगाने में मदद करेगी। मगर ज़्यादा सम्भावना इसी बात की है कि यह पार्टी राष्ट्रीय स्तर पर एक विकल्प नहीं बन सकती और यह आगे चलकर या तो एक दक्षिणपंथी दल के रूप में संसदीय राजनीति में व्यवस्थित हो जायेगी या फिर बिखर जायेगी। इसके बिखरने की स्थिति में इसके सामाजिक समर्थन-आधार का बड़ा भाग हिन्दुत्ववादी फासीवाद के साथ ही जुड़ेगा।

मज़दूरों के सवाल पर इनका रुख अभी से बिल्कुल नंगा हो चुका है। अभी दिल्ली में मज़दूरों के प्रदर्शन में ठेका मज़दूरी ख़त्म करने के सवाल पर इनके श्रममंत्री ने बेशर्मी से साफ़ कहा कि ठेका मज़दूरी ख़त्म करना इनके एजेण्डे में नहीं है क्योंकि उन्हें मालिकों और ठेका कम्पनियों के हितों का भी ख़्याल रखना है। इनके श्रम मंत्री ख़ुद ही एक चमड़ा फैक्टरी के मालिक हैं जहाँ कहने की ज़रूरत नहीं कि श्रम क़ानूनों का खुला उल्लंघन होता है। फिर इसमें आश्चर्य क्या कि दिल्ली के तमाम औद्योगिक इलाक़ों में आप पार्टी के मुख्य संगठनकर्ता फैक्टरी मालिक, ठेकेदार और प्रापर्टी डीलर हैं। बवाना औद्योगिक क्षेत्र में फैक्टरी मालिकों की एसोसिएशन के अध्यक्ष प्रकाशचन्द्र जैन की उस क्षेत्र में 'आप' पार्टी के मुख्य नेता हैं। इनका मज़दूर विरोधी चरित्र दिन-ब-दिन नंगा होता जा रहा है। मगर बहुत से सामाजिक-जनवादी और एनजीओपरस्त वामपंथी अभी भी इनसे उम्मीद लगाये हुए हैं। पराजय की मानसिकता से ग्रस्त बहुतेरे वामपंथी आज मान चुके हैं कि क्रान्ति तो होनी नहीं, तो अगर कोई "थोड़ा-बहुत कुछ" कर रहा है तो उसी से क्यों न उम्मीद बाँध ली जाये। यही लोग हैं जो 'आप' की आलोचना करने वाले कम्युनिस्टों को कोस रहे हैं कि वे इनका विरोध करके मोदी को रोकने की सम्भावना कम कर रहे हैं। तीस साल से भाकपा में रहे कमल मित्र चिनाय या सीपीआईएमएल (लिबरेशन) के संदीप सिंह जैसे जो लोग सीधे 'आप' में शामिल हो रहे हैं या इसका समर्थन कर रहे हैं उनका मार्क्सवाद तो पहले ही घास चरने जा चुका था। ये सभी या तो पराजित मानस लोग हैं या पतित हो चुके हैं। 'ले मशालें चल चुके हैं लोग मेरे गाँव के' लिखने वाले कवि बली सिंह चीमा भी 'आप' का दामन थाम चुके हैं। जो लोग जब वक़्त से पहले ही आशावाद के शिकार हो जाते हैं उनका निराश होकर दूसरे छोर पर पहुँच जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

आज जब एक बार फिर फासीवाद ख़तरा सिर पर मँडरा रहा है तब भी संसदमार्गी कम्युनिस्ट पार्टियाँ संविधान और संसद की ही ढाल तलवार लेकर फासीवाद का मुक़ाबला करना चाहती हैं। कहने को इनके पास मज़दूरों की बड़ी राष्ट्रीय यूनियनें हैं, पर चूँकि इन्होंने उनको कभी कोई राजनीतिक चेतना दी ही नहीं, सिर्फ़ अर्थवादी दलदल में धँसाये रखा, इसलिए ये लोग मज़दूर वर्ग को कभी हिन्दुत्ववादी फासिस्टों के खिलाफ लामबन्द कर ही नहीं सकते। इनके लिए हिन्दुत्ववादी फासीवाद के विरोध का एकमात्र मतलब है संसद में कथित 'तीसरा मोर्चा' बनाकर भाजपा को सत्तासीन न होने देना। भाजपा सत्तासीन न भी हो, तो भारतीय पूँजीवाद के ढाँचागत संकट और नवउदारवाद की जमीन से खाद-पानी पाकर ये फासिस्ट आने वाले दिनों में भारतीय सामाजिक परिदृश्य पर मज़बूती से बने रहेंगे और उत्पात मचाते रहेंगे। केवल मेहनतकशों को जुझारू ढंग से संगठित करके ही इनसे निपटा जा सकता है। भारतीय फासिस्ट हिटलर, मुसोलिनी, फ्रांको नहीं बन सकते, पर भारतीय पूँजीपति वर्ग जंजीर से बँधे कुत्ते की तरह इन्हें हरदम तैयार रखेगा।

फासिस्टों का मुकाबला क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट ही कर सकते हैं। फिलहाल क्रान्तिकारी शिविर भी दक्षिण और "वाम" विचलनों के बीच झूल रहा है और लम्बे समय से ठहराव-बिखराव का शिकार है। मगर जो भी कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुप मजदूरों के बीच राजनीतिक काम कर रहे हैं, वही आने वाले दिनों में सड़कों पर फासिस्ट बर्बरों का मुकाबला करेंगे। हमें याद रखना होगा कि 1980 के दशक में, पंजाब में कॉलेजों के हॉस्टलों और परिसरों से लेकर गाँव-गाँव तक में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों ने ही खालिस्तानियों का मुकाबला किया था। भाकपा-माकपा के नेता तो तब घरों में दुबके थे और कमाण्डो-सुरक्षा में चलते थे। सैकड़ों कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी युवाओं ने जान की कुर्बानी दी पर खालिस्तानियों को सबक भी उन्होंने ही सिखाया। पूरी दुनिया में फासीवाद को धूल चटाने का काम लड़ाकू कम्युनिस्टों ने ही किया है। हमें इतिहास से सबक लेना होगा और आने वाले दिनों की जुझारू तैयारी करनी होगी।

लगातार बढ़ता जा रहा है स्त्रियों और बच्चों की तस्करी का घिनौना कारोबार

मुनाफ़े पर टिके आर्थिक–सामाजिक–राजनीतिक ढाँचे ने मानवता को कितना अमानवीय बना दिया है इसकी एक भयंकर तस्वीर मनुष्यों की तस्करी के रूप में देखी जा सकती है। विश्व स्तर पर यह व्यापार विश्व में तीसरा स्थान हासिल कर चुका है। यह तस्करी वेश्यावृत्ति, शारीरिक शोषण, जबरन विवाह, बन्धुआ मज़दूरी, अंगों की तस्करी आदि के लिए की जाती है। अस्सी फ़ीसदी की तस्करी तो सेक्स व्यापार के लिए ही की जाती है। मनुष्य की तस्करी का सबसे अधिक शिकार

बच्चे हो रहे हैं और उनमें से भी बच्चियों को इसका सबसे अधिक शिकार होना पड़ रहा है। संयुक्त राष्ट्र के एक आँकड़े के मुताबिक विश्व स्तर पर हर वर्ष 12 लाख बच्चों की ख़रीद–फरोख्त होती है। इन बच्चों में आधों की उम्र 11 से 14 वर्ष के बीच होती है।

एक वेबसाइट ''ह्यूमन ट्रेफ़िकिंग : द फैक्ट्स'' के एक आँकड़े के मुताबिक 56 प्रतिशत तस्करी एशिया या प्रशान्त क्षेत्र के देशों से, 10 प्रतिशत लातिनी अमेरिका और कैरिबियन क्षेत्र से, 9.2 प्रतिशत सब–सहारा देशों से, 10.8 प्रतिशत विकसित पूँजीवादी देशों और 8 फ़ीसदी अन्य देशों से होती है। अफगानिस्तान, कान्गो, पाकिस्तान के बाद भारत स्त्रियों के लिए सबसे असुरक्षित देश माने गये हैं।

भारत मनुष्यों की तस्करी का बड़ा अड्डा है। भारत में यह तस्करी 90 प्रतिशत अन्दरूनी स्तर पर होती है यानी एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में। लेकिन इसके साथ ही खाड़ी देशों सहित यूरोप और अमेरिका में भी बच्चे और स्त्रियाँ अच्छी–खासी संख्या में तस्कर किये जाते हैं। भारत सरकार के ही एक आँकड़े के मुताबिक देश में हर आठ मिनट में एक बच्चा ग़ायब होता है।

सन् 2011 की सरकारी रिपोर्ट कहती है कि इस वर्ष के दौरान देश भर में 35,000 बच्चे ग़ायब हुए। यहाँ यह भी नोट करना चाहिए कि सिर्फ़ 35 प्रतिशत मामलों की ही रिपोर्ट होती है बाक़ी मामले किसी न किसी कारण से दब कर रह जाते हैं। भारत में सरकारी आँकड़ों के मुताबिक तीस लाख वेश्याएँ हैं जिनमें से 40 प्रतिशत 18 वर्ष से कम उम्र की लड़कियाँ हैं। कम उम्र की लड़कियों की माँग बढ़ती जा रही है। इसका एक कारण यह भी है कि वेश्याओं में एड्स बहुत अधिक फैली हुई है। मुम्बई में 70 प्रतिशत वेश्याएँ एड्स की मरीज़ हैं। पर्यटन स्थलों और धार्मिक तीर्थों के स्थानों पर सेक्स व्यापार काफ़ी बड़े स्तर पर फल–फूल रहा है। पैडोफीलिया (बच्चों–बच्चियों के साथ सम्भोग, उन्हें यातनाएँ देना, यहाँ तक कि हत्या करके उनका मांस तक खाना) से ग्रस्त मनोरोगियों द्वारा बच्चों की ख़रीद–फरोख़्त और बच्चों को अगवा करने की परिघटना बढ़ती जा रही है।

जबरन ''शादी'' के लिए भी लड़कियाँ ग़ायब होती हैं और उनकी तस्करी की जाती है। भारत में मादा भ्रूण हत्या बड़े स्तर पर होने के कारण स्त्रियाँ–मर्दों का अनुपात काफ़ी डगमगा गया है। पंजाब, हरियाणा और राजस्थान जैसे राज्यों में इस मामले में काफ़ी बुरा हाल है। इण्डिया टुडे की एक रिपोर्ट के मुताबिक सन् 2012 में लगभग 15,000 स्त्रियों की बिहार, ओडीसा और आंध्र प्रदेश से राजस्थान में तस्करी की गयी।

पूँजीपति वर्ग हमेशा सस्ती से सस्ती श्रम शक्ति ढूँढ़ता रहता है। स्त्रियों और बच्चों का सस्ता श्रम इसके लिए ''वरदान'' है। कारखानों, वर्कशॉपों, खेतों, ईंट, भट्ठों, खदानों, घरेलू कामों के लिए देश का पूँजीपति वर्ग स्त्रियों और बच्चों के सस्ते श्रम का इस्तेमाल करता है। मुनाफ़े की हवस पूँजीपति वर्ग को किसी भी हद तक अमानवीय बना सकती है। भारत में स्त्रियों और बच्चों को बन्धुआ मज़दूर बनाकर रखना मुक़ाबलतन आसान है। इसलिए यह भी स्त्रियों और बच्चों की तस्करी का एक कारण है। इन कामों के लिए बालिग मर्दों की भी तस्करी होती है।

मानवीय तस्करी का शिकार होने वाले बच्चों और स्त्रियों में से बहुसंख्या ग़रीब घरों से होती है। सूखा, भुखमरी, प्राकृतिक आपदा या अन्य सामाजिक उथल–पुथल वाले क्षेत्रों में से बड़े स्तर पर बच्चे और स्त्रियाँ बेचे जाते, ग़ायब और तस्कर किये जाते हैं। परिवार के लोग भी ग़रीबी के कारण बच्चों–बच्चियों को बेच देते हैं।

समाज में स्त्रियों का विभिन्न रूपों में दमन–उत्पीड़न बढ़ता जा रहा है। इन सभी रूपों में स्त्रियों की तस्करी के रूप में होने वाला दमन–उत्पीड़न सबसे अधिक उभार पर है। बी.बी.सी. की एक रिपोर्ट कहती है कि पुलिस के रिकार्ड के मुताबिक सन् 2011 के बाद भारत में जहाँ अगवा करने की घटनाओं में 19.4 प्रतिशत, दहेज से सम्बन्धित हत्याओं की घटनाओं में 2.7 प्रतिशत, यातना देने की घटनाओं में 5.8 प्रतिशत वृद्धि हुई है वहीं स्त्रियों की तस्करी में 122 प्रतिशत की भयंकर वृद्धि हुई है।

जिन लड़कियों–स्त्रियों को वेश्यावृत्ति के नर्ककुण्ड में धकेल दिया जाता है उनकी बुरी हालत का अंदाज़ा लगा पाना आसान नहीं है। एक संस्था ई.सी.पी.ए.टी. ने दीपा नाम की एक लड़की से सम्बन्धित एक रिपोर्ट प्रसारित की थी। दीपा की आपबीती से वेश्याओं की हालत का कुछ अंदाजा लगाया जा सकता है। एक औरत द्वारा दीपा को बेहोशी की दवाई सुँघाकर एक वेश्यालय में बेच दिया गया था। दीपा बताती है कि उसे कहा गया कि उसे वेश्या बनना पड़ेगा। मना करने पर उसे बुरी तरह पीटा गया। उसके पूरे शरीर पर नील पड़ गये। लोहे की गर्म छड़ों से उसे यातनाएँ दी गईं। हारकर उसे वेश्या बनने पर मज़बूर होना पड़ा। उसे रोजाना सुबह छह बजे से रात के तीन बजे तक 12–14 ग्राहक भुगताने पड़ते थे। किसी तरह वह वहाँ से भागने में कामयाब हुई।

एड्स, सरवाइकल, कैंसर और अन्य शारीरिक समस्याओं का वेश्याओं को सामना करना पड़ता है। हिंसा, गाली–गलौज़, स्थायी मानसिक परेशानी इन्हें झेलनी पड़ती है। जो लड़कियाँ/महिलाएँ किसी तरह इस नर्ककुण्ड से छुटकारा पाने में कामयाब हो भी जाती हैं उनका आगे का जीवन भी आसान नहीं होता। अधिकतर मामलों में तो माँ–बाप और अन्य नज़दीकी सगे–सम्बन्धी भी उनसे दूरी बनाये रखने में भलाई समझते हैं।

मानव तस्करी का यह उद्योग पुलिस, प्रशासन और सरकार की जानकारी ओर मिलीभगत के बिना जारी नहीं रह सकता है और न ही फल–फूल सकता है। जनवरी, 2013 में बी.बी.सी. द्वारा कोलकाता के एक तस्कर से बात की गयी। तस्कर ने बताया कि वह साल में 150 से 200 लड़कियों (और माँग वृद्धि पर है) की तस्करी करता है। इन लड़कियों की उम्र 10,11 से लेकर 16–17 तक होती है। वह हर लड़की के पीछे लगभग पचास हज़ार रुपए कमा लेता है। विभिन्न क्षेत्रों में उसके एजेण्ट बैठे हैं जो लड़कियों के माँ–बाप से वायदा करते हैं कि वे लड़कियों को दिल्ली में नौकरी पर लगवा देंगे। इसके बाद इन लड़कियों के साथ क्या बीतती है। तस्कर ने बताया कि स्थानीय राजनीतिक नेता और पुलिस इसके बारे में अच्छी तरह से जानते हैं। हर शहर में पुलिस को वे रिश्वत देते हैं।

मानव तस्करी और इसका इतने

बड़े पैमाने पर फैलाव किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को यह सोचने पर मज़बूर करता है कि आखिर कब तक मानवता मुनाफ़ाखोरों के अपराधों को सहन करती रहेंगी। मुनाफ़ाखोर व्यवस्था ने मानवता के माथे पर असंख्य कलंक लगाये हैं – अमीरी–ग़रीबी की भयंकर खाई, बुनियादी सहूलियतों से भी वंचित मेहनतक़श जनता, वातावरण की तबाही, प्रकृति से ख़तरनाक छेड़छाड़, खूँखार युद्ध, बच्चों और स्त्रियों की तस्करी... अब और क्या गिनाया जाना ज़रूरी है यह साबित करने के लिए मुनाफ़े पर टिके इस आर्थिक–सामाजिक–राजनीतिक ढाँचे के खात्मे के बिना मानवता की बेहतरी सम्भव नहीं हैं?

–लखविन्दर

कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है?

(पेज 11 से आगे)

वापस बुला सकते हों। हर स्तर की पंचायत के सदस्यों को अपने स्तर पर फैसले लेने और लागू करने का अधिकार हो, पर उनकी यह स्वायत्तता पूरे मेहनतकश राज्य के सम्पूर्ण हितों के मातहत हो, जिसकी देखभाल की ज़िम्मेदारी केन्द्रीय स्तर की पंचायत की हो। चुने हुए प्रतिनिधियों का वेतन आम मेहनतकशों के बराबर हो और उन्हें कोई भी विशेषाधिकार न प्राप्त हो। प्रशासन और प्रबन्धन का ज़्यादातर काम जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों की कमेटियों द्वारा अंजाम दिये जायें। यह एक ऐसी व्यवस्था होगी जिसमें नीतियाँ बनाने वाले (विधायिका) और उन्हें लागू करने वाले (कार्यपालिका) के बीच अन्तर नहीं होगा। ऊपर से नीचे तक इस पिरामिडीय संरचना में विकेन्द्रीकरण और केन्द्रीकरण दोनों के तत्व मौजूद होंगे। शुरू में वेतनभोगी नौकरशाही की मज़बूरी भी हो तो यह नौकरशाही मज़दूर राज्य के अवयव – अपने स्तर की पंचायत के मातहत हो और धीरे–धीरे नौकरशाही तन्त्र के सम्पूर्ण ख़ात्मे की प्रक्रिया जारी रहे। इस प्रकार के ढाँचे में नीचे से ऊपर तक जननिगरानी की वजह से भ्रष्टाचार की समस्या का भी समाधान सम्भव हो सकेगा।

मौजूदा व्यवस्था के अन्तर्गत व्यापक जनता की पहल पर गठित ऐसी प्रतिनिधि सभाओं को कोई संवैधानिक अधिकार भले ही न हासिल हो, लेकिन क्रान्तिकारी शक्तियों को जनता का आह्वान करना चाहिए कि वह बुर्जुआ संसदीय प्रणाली और फर्जी पंचायती राज्य के सारे छल–छद्म की जवाबी कार्रवाई के तौर पर गाँव–गाँव और औद्योगिक क्षेत्रों में, लोक स्वराज्य पंचायतों का गठन करना शुरू कर दे। हो सकता है कि ऐसी प्रतिनिधि सभा पंचायतों का गठन शुरुआती दौर में पूँजीवादी संसदीय प्रणाली को ख़ारिज करने की एक प्रतीकात्मक प्रक्रिया मात्र हो, पर जनसंघर्षों के आगे बढ़ने की प्रक्रिया में ऐसी प्रतिनिधि संस्थाओं का गठन और इनके अस्तित्व का बने रहना एक कारगर हथियार बन सकता है और धीरे–धीरे ऐसी प्रतिनिधि संस्थाएँ जनता की क्रान्तिकारी समानान्तर सत्ता का केन्द्र बनकर उभर सकती हैं।

अत: हमें साम्राज्यवाद–पूँजीवाद के विरुद्ध नयी सर्वहारा क्रान्ति की तैयारी के इस दौर में सच्चे जनवाद की बहाली के लिए लोकस्वराज्य पंचायतों के गठन का नारा बुलन्द करना होगा। साथ ही साथ हमें मात्र 11 फ़ीसदी लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाली संविधान सभा द्वारा निर्मित जनविरोधी पूँजीवादी संविधान को रद्दोबदल करके एक नया संविधान बनाने के लिए सार्विक मताधिकार के आधार पर गठित एक नयी संविधान सभा बुलाने का नारा भी बुलन्द करना होगा।

यह पूरी लेखमाला राहुल फाउण्डेशन से पुस्तकाकार प्रकाशित हो गयी है। – सं.

जब फासिस्ट मज़बूत हो रहे थे

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट

जर्मनी में
जब फासिस्ट मजबूत हो रहे थे
और यहां तक कि
मजदूर भी
बड़ी तादाद में
उनके साथ जा रहे थे
हमने सोचा
हमारे संघर्ष का तरीका गलत था
और हमारी पूरी बर्लिन में
लाल बर्लिन में
नाजी इतराते फिरते थे
चार–पांच की टुकड़ी में
हमारे साथियों की हत्या करते हुए
पर मृतकों में उनके लोग भी थे
और हमारे भी
इसलिए हमने कहा
पार्टी में साथियों से कहा
वे हमारे लोगों की जब हत्या कर रहे हैं
क्या हम इंतजार करते रहेंगे
हमारे साथ मिल कर संघर्ष करो
इस फासिस्ट विरोधी मोरचे में
हमें यही जवाब मिला
हम तो आपके साथ मिल कर लड़ते
पर हमारे नेता कहते हैं
इनके आतंक का जवाब लाल आतंक नहीं है
हर दिन
हमने कहा
हमारे अखबार हमें सावधान करते हैं
आतंकवाद की व्यक्तिगत कार्रवाइयों से
पर साथ–साथ यह भी कहते हैं
मोरचा बना कर ही
हम जीत सकते हैं
कामरेड, अपने दिमाग में यह बैठा लो
यह छोटा दुश्मन
जिसे साल दर साल
काम में लाया गया है
संघर्ष से तुम्हें बिलकुल अलग कर देने में
जल्दी ही उदरस्थ कर लेगा नाजियों को
फैक्टरियों और खैरातों की लाइन में
हमने देखा है मजदूरों को
जो लड़ने के लिए तैयार हैं
बर्लिन के पूर्वी जिले में
सोशल डेमोक्रेट जो अपने को लाल मोरचा कहते हैं
जो फासिस्ट विरोधी आंदोलन का बैज लगाते हैं
लड़ने के लिए तैयार रहते हैं
और चायखाने की रातें बदले में गुंजार रहती हैं
और तब कोई नाजी गलियों में चलने की हिम्मत
नहीं कर सकता
क्योंकि गलियां हमारी हैं
भले ही घर उनके हों

अंग्रेजी से अनुवादः रामकृष्ण पाण्डेय

पाँचवी अरविन्द स्मृति संगोष्ठी

विषयः समाजवादी संक्रमण की समस्याएँ

10–14 मार्च, 2014, इलाहाबाद

आयोजन स्थलः विज्ञान परिषद, प्रयाग सभागार, चन्द्रशेखर आज़ाद पार्क के सामने, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

आलेख एवं बहस के केन्द्रीय बिन्दुः

– समाजवादी संक्रमण की समस्याओं पर चिन्तन की ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया – मार्क्स–एंगेल्स से माओ त्से–तुङ तक।
महान बहस और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का महत्व।
– बीसवीं सदी के महान समाजवादी प्रयोगों की सफलताओं और असफलताओं का नये सिरे से आलोचनात्मक मूल्यांकन।
सोवियत संघ और चीन में समाजवादी संक्रमण के प्रयोग और उनकी समस्याएँ।
पूँजीवादी पुर्नस्थापनाः विविध अवस्थितियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन।
– स्तालिन और उनके दौर के पुनर्मूल्यांकन का प्रश्न।
– सर्वहारा अधिनायकत्व की अवधारणा और इसके अमली रूप। समाजवादी संक्रमण के दौरान हिरावल पार्टी,
वर्ग और राज्यसत्ता के बीच के सम्बन्ध।
– क्यूबा, उत्तर कोरिया, वियतनाम, "बोलिवारियन विकल्प", यूनान में सिरिज़ा के प्रयोग और नेपाल में हुए प्रयोगों का आलोचनात्मक मूल्यांकन।
– समाजवादी संक्रमण के बारे में त्रात्सकीपंथी, विभिन्न अकादमिक मार्क्सवादी, नवमार्क्सवादी, और उत्तरमार्क्सवादी अवस्थितियों की आलोचना।

पाँच दिनों की इस गम्भीर बहस में आप साग्रह आमन्त्रित हैं। आलेख भेजने और आने की सूचना देने या किसी भी जानकारी के लिए आप नीचे दिये पते/फोन/ईमेल पर सम्पर्क कर सकते हैंः

अरविन्द स्मृति न्यास
69 ए–1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड,
निशातगंज, लखनऊ–226006,
ईमेलः **info@arvindtrust.org / arvindtrust@gmail.com**
फोनः 9936650658, ईमेलः **katyayani.lko@gmail.com, फोनः 8853093555, *ईमेलः* satyamvarma@gmail.com**
विषय के विस्तृत विवरण तथा अन्य ब्योरों के लिए हमारी वेबसाइट* http://arvindtrust.org *देखें।

डाक पंजीयन: SSP/LW/NP-319/2011-2013
प्रेषित डाकघर: आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि: दिनांक 20 प्रत्येक माह

बोलते आँकड़े चीखती सच्चाइयाँ

सतीश आचार्य का कार्टून। उनके ब्लॉग से साभार
(http://cartoonistsatish.blogspot.in/2013/07/lootere-since-1947.html)

रिजर्व बैंक की हाल की रिपोर्ट के मुताबिक सरकारी बैंकों ने पूँजीपतियों का एक लाख करोड़ का कर्ज़ा माफ़ कर दिया है। रिजर्व बैंक के डिप्टी गवर्नर केसी चक्रवर्ती ने बताया कि एक वर्ष के दौरान जुटाये गये आँकड़ों से पता चला है कि ये वे ऋण थे जो पूँजीपति कई वर्षों से दबाकर बैठे थे। 2008 में जब सरकार ने किसानों का 60,000 करोड़ का ऋण माफ़ किया था तो पूँजीपतियों ने भारी शोर मचाया था। यही पूँजीपति और मीडिया में इनके दलाल सरकारी शिक्षा और बस, रेल, पानी, बिजली, स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाओं पर दी जाने वाली सब्सिडी पर भी बेशर्मी से हो-हल्ला मचाते हैं कि इससे अर्थव्यवस्था चौपट हो जायेगी। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि दो वर्ष पहले के बजट में सरकार ने पूँजीपतियों को पाँच लाख करोड़ रुपये की छूट दी थी। उन्हें तमाम तरह के टैक्सों आदि में भी हर केन्द्र और राज्य सरकार से भारी छूट मिलती है। इसके बाद भी उन्हें देने के लिए जो देनदारी बचती है उसे भी न देने के लिए वे तरह-तरह की तिकड़में करते हैं। इसके लिए उनके पास एकाउण्ट्स के विशेषज्ञों और वक़ीलों की पूरी फौज़ रहती है।

रिजर्व बैंक के मुताबिक 2007 से 2013 के बीच बैंकों के न चुकाये जाने वाले ऋणों की कुल राशि में क़रीब पाँच लाख करोड़ का इज़ाफा हो गया। इसमें से भारी हिस्सा वे ऋण हैं जो कारपोरेट कम्पनियों को दिये गये थे।

कुछ सबसे बड़े लोन डिफॉल्टरों की सूची:
मोज़रबियर इंडिया और ग्रुप कम्पनियाँ - 581 करोड़ रुपये
सेंचुरी कम्युनिकेशंस लि. - 624 करोड़ रुपये
इंडिया टेक्नोमैक - 629 करोड़ रुपये
डेक्कन क्रॉनिकल होल्डिंग लि. - 700 करोड़ रुपये
मुरली इण्डस्ट्रीज़ एंड एक्सपोर्ट लि. 884 करोड़ रुपये
केमरॉक इण्डस्ट्रीज़ एंड एक्सपोर्ट 929 करोड़ रुपये
वरुण इण्डस्ट्रीज़ लि. - 1129 करोड़ रुपये
स्टर्लिंग ऑयल रिसोर्सेज़ 1197 करोड़ रुपये
कारपोरेट इस्पात एलॉय - 1360 करोड़ रुपये
सूर्या विनायक इण्डस्ट्रीज़ 1446 करोड़ रुपये
स्टर्लिंग बायोटेक लि. - 1732 करोड़ रुपये
ज़ूम डेवलपर्स प्रा. लि. - 1810 करोड़ रुपये
इलेक्ट्रोथर्म इण्डिया लि. - 2211 करोड़ रुपये
विनसम डायमंड एंड ज्यूलरी - 2660 करोड़ रुपये
किंगफिशर एअरलाइंस - 2673 करोड़ रुपये

इसके अलावा किंगफिशर के मालिक विजय माल्या को 6500 करोड़ रुपये कर्ज़ देने वाले 14 बैंकों पर माल्या ने कर्ज़ न चुकाने के लिए कई अदालतों में मुक़दमा कर रखा है। यह वही विजय माल्या है जो हर साल आईपीएल के तमाशे के लिए करोड़ों रुपये क्रिकेट खिलाड़ियों को ख़रीदने पर खर्च करता है और पार्टियों पर पानी की तरह पैसे बहाता है।

फरवरी माह में वित्त राज्य मंत्री जेडी सीलम ने लोकसभा में बताया कि कारपोरेट घरानों पर 2,46,416 करोड़ रुपये के भारी टैक्स बकाया हैं। 45 ऐसे मामले हैं जिनमें एक-एक कम्पनी पर 500 करोड़ रुपये से अधिक बकाया है। इनमें ऐसे घराने भी शामिल हैं जो केजरीवाल के भ्रष्टाचार-विरोधी आन्दोलन को समर्थन देते रहे हैं।

पिछले दिनों एक संस्था द्वारा कराये गये अध्ययन से पता चला कि 2004-05 के बीच छह राष्ट्रीय पार्टियाँ की आय का 75 प्रतिशत - यानी 4,895 करोड़ रुपये - ''अज्ञात स्रोतों'' से आया। इनमें कारपोरेट घरानों से लेकर हवाला कारोबारी तक शामिल हैं। कांग्रेस तो सबसे बड़ी राशि पाने वाली है ही मगर इसमें तथाकथित लाल झण्डे वाली भाकपा-माकपा से लेकर शुचिता की दुहाई देने वाली भाजपा तक शामिल हैं। इस रक़म का आधा हिस्सा ऐन चुनावों के पहले जमा किया गया था।

अमेरिका: दुनिया का सबसे रुग्ण और अपराधग्रस्त समाज

अमेरिका में दुनिया की 5 प्रतिशत आबादी रहती है, पर दुनिया के 25 प्रतिशत सज़ायाफ़्ता कैदी सिर्फ अमेरिकी जेलों में रहते हैं।

समृद्धि के ''स्वर्ग'' की सच्चाई

सिर्फ 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के पचास वर्षों में अमेरिका ने पूरी दुनिया के विभिन्न हिस्सों में युद्ध थोपकर, हमले करके, बमबारी करके और कठपुतली सैनिक तानाशाहों तथा आतंकवादी गिरोहों की हत्यारी कार्रवाइयों को शह देकर जितनी तबाही मचायी है, उतनी औपनिवेशिक ताकतों ने सौ सालों में भी नहीं मचायी। लेकिन अमेरिकी समाज की अन्दरूनी तस्वीर भी उतनी ही भयावह है। दुनिया के सबसे ख़र्चीले और विलासी समाज में न केवल अमीरी-ग़रीबी की खाई चौड़ी है और ग़रीबों की ज़िन्दगी गरीब देशों जैसी ही नारकीय है, बल्कि यह दुनिया का सबसे अधिक अपराधग्रस्त और आत्मिक रूप से बीमार समाज है।

अमेरिका में प्रतिवर्ष औसतन 1 करोड़ 20 लाख अपराध होते हैं। दुनिया के किसी भी देश में सालाना साठ लाख से अधिक अपराध नहीं होते। दुनिया में सबसे अधिक रिपोर्टेड अपराधों वाले शीर्षस्थ दस देश ये हैं:

2011 में प्रति एक लाख आबादी पर अपराधों की संख्या

अमेरिका - 12,408,899
जर्मनी - 2,112,843
फ्रांस - 1,172,547
रूसी संघ - 1,041,340
इटली - 900,870
कनाडा - 628,920
चीले - 611,322
पोलैण्ड - 521,942
स्पेन - 377,965
नीदरलैण्ड्स -372,305

अमेरिका में 10 लाख लोग किसी न किसी अपराधी गिरोह के सदस्य हैं।

अमेरिका में 22 लाख लोग जेलों में बंद हैं। कैदियों की संख्या के मामले में अमेरिका दुनिया में पहले स्थान पर है। आबादी में कैदियों के प्रतिशत अनुपात के हिसाब से भी यह दुनिया में पहले स्थान पर है। अमेरिका में दुनिया की 5 प्रतिशत आबादी रहती है, पर दुनिया के 25 प्रतिशत सज़ायाफ़्ता कैदी सिर्फ अमेरिकी जेलों में रहते हैं। वहाँ की प्रति एक लाख आबादी में से 730 जेल हैं।

दुनिया में सबसे अधिक जेलें अमेरिका में हैं। वहाँ 4,575 जेलें हैं। दूसरे नम्बर पर रूस है जहाँ 1,029 जेलें हैं।

अमेरिका में हर वर्ष औसतन 48 लाख स्त्रियाँ अपने पति, प्रेमी या मित्र द्वारा यौन-आक्रमण या बलात्कार की शिकार होती हैं। प्रति दिन औसतन तीन स्त्रियों की उनके पति, प्रेमी या मित्र द्वारा हत्या कर दी जाती है। वहाँ प्रतिदिन औसतन नौ स्त्रियों की हत्या होती है। सिर्फ वर्ष 2006 के दौरान अमेरिका में 2,32,960 स्त्रियाँ बलात्कार या यौन हमले का शिकार हुईं।

अमेरिका में वेश्यावृत्ति का सालाना 14अरब डॉलर का धन्धा है। वहाँ (रोड प्रान्त को छोड़कर) वेश्यावृत्ति प्रतिबन्धित है, पर पुलिस रिकार्ड के मुताबिक प्रति एक लाख पर 23 वेश्याएँ हैं। वास्तविक संख्या इससे कई गुना अधिक है। बाल-वेश्यावृत्ति और पुरुष वेश्यावृत्ति भी वहाँ हर वर्ष तेज़ी से बढ़ रही है। अमेरिका पोर्न सामग्री का सबसे बड़ा उत्पादक और ख़रीदार है। वहाँ के पोर्न-उद्योग (पोर्न फिल्में, वीडियो, इण्टरनेट, पत्रिकाएँ, 'पे-पर-व्यू' सेलफोन) की सालाना शुद्ध कमाई औसत 4 अरब 30 करोड़ डॉलर है।

- कविता

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006